प्रकरण ग्यारह

स्वप्न साकार हुआ

मेरी योजना थी कि मैं अमेरिका जाऊँ। आमतौर पर लोग लंदन जाते हैं। लेकिन मैं लंदन नहीं जाना चाहता था। मैं केवल यह सोचने में लगा था कि न्यूयार्क कैसे जाऊँ। मैं सोच रहा था, "मैं इधर टोकियो, जापान होकर जाऊँ या दूसरे रास्ते से? कौन-सा मार्ग सस्ता पड़ेगा?" यही मेरा प्रस्ताव था। मेरा लक्ष्य सदैव न्यूयार्क था। कभी कभी मैं स्वप्न देखता कि मैं न्यूयार्क पहुँच गया हूँ।

—श्रील प्रभुपाद

लिखना आधी लड़ाई जीतने के समान था, दूसरी आधी लड़ाई लिखे को प्रकाशित करना था। भक्तिवेदान्त स्वामी और उनके आध्यात्मिक गुरु, दोनों ही *श्रीमद्‌भागवत* का अँग्रेजी में छपना और बड़े पैमाने पर उसका वितरित होना देखना चाहते थे। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की शिक्षाओं के अनुसार कृष्णभावनामृत के प्रसार के लिए पुस्तकों का मुद्रण और वितरण आधुनिकतम रूप में होना चाहिए। यद्यपि रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी और जीव गोस्वामी वैष्णव ज्ञान को बहुत-सी पुस्तकों के रूप में बड़े अच्छे प्रकार से प्रस्तुत कर चुके थे, लेकिन उनकी पाण्डुलिपियाँ राधा-दामोदर मन्दिर और अन्य स्थानों में पड़ी खराब हो रही थीं और गौड़ीय मठ ने इन गोस्वामियों की जिन पुस्तकों को प्रकाशित भी किया था, उनका वितरण किसी बड़े पैमाने पर नहीं हो रहा था। भक्तिवेदान्त स्वामी के एक गुरुभाई ने उनसे पूछा कि भागवत् की नई टीका तैयार करने में वे इतना समय और श्रम क्यों लगा रहे है, जबकि बहुत से महान् आचार्य उसकी टीका पहले ही लिख चुके थे। लेकिन भक्तिवेदान्त स्वामी के मन में ऐसा कोई प्रश्न नहीं था; यह उनके आध्यात्मिक गुरु का आदेश था।

व्यावसायिक प्रकाशकों को भागवत्-माला के साठ खंडों के प्रकाशन में कोई रुचि

नहीं थी और भक्तिवेदान्त स्वामी को कोई रुचि नहीं थी कि भागवत् के श्लोकों, शब्दार्थों और तात्पर्यों को पूर्व आचार्यों की टीकाओं पर परम्परा रूप से आधारित करके साठ खंडों से कम में प्रकाशित करें। किन्तु इन पुस्तकों को प्रकाशित करने के लिए उन्हें निजी अनुदान इकट्ठे करने होंगे और अपने खर्चे से उन्हें छापना होगा। *श्रीमद्भागवत* पर टीका लिखने के लिए राधा-दामोदर मन्दिर एक उपयुक्त स्थान हो सकता था, लेकिन उन टीकाओं को छापने और प्रकाशित करने के लिए नहीं। उसके लिए उन्हें नई दिल्ली जाना होगा।

उनके दिल्ली के परिचितों में भक्तिवेदान्त स्वामी ने सोचा, हितशरण शर्मा सहायक हो सकते थे। यद्यपि जब वे श्रीमान् शर्मा के घर में ठहरे थे, तब श्रीमान् शर्मा एक व्यक्ति की अपेक्षा एक वर्ग-विशेष के सदस्य के रूप में उनको ज्यादा मान देते थे; किन्तु कम से कम इतना तो था कि श्रीमान् शर्मा साधुओं की सहायता में रुचि लेते थे और भक्तिवेदान्त स्वामी को वे एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति मानते थे। इसलिए जब भक्तिवेदान्त स्वामी श्रीमान् शर्मा से उनके कार्यालय में मिले तो, यह सोचकर कि *श्रीमद्भागवत* का प्रचार करना उनका धार्मिक कर्तव्य था, वे उनकी सहायता करने को तैयार हो गये।

हितशरण शर्मा दो कारणों से सहायता करने में सक्षम थे : वे धनाढ्य परोपकारी जे. डी. डालमिया के सचिव थे और राधा प्रेस नामक व्यावसायिक मुद्रण गृह के स्वामी थे। श्रीमान् शर्मा जानते थे कि यदि वे सुझाव भी दें, तो भी श्रीमान् डालमिया भक्तिवेदान्त स्वामी को सीधे धन नहीं देंगे। इसलिए उन्होंने भक्तिवेदान्त स्वामी को राय दी कि वे गोरखपुर जायें और अपनी पाण्डुलिपि हनुमान प्रसाद पोद्दार को दिखाएँ, जो धार्मिक ग्रंथों के प्रकाशक थे। उनकी राय को मानकर भक्तिवेदान्त स्वामी ने दिल्ली से ४७५ मील की दूरी पर स्थित गोरखपुर की यात्रा की।

इस यात्रा में भी खर्च तो हुआ ही। ८ अगस्त १९६२ ई. को जब वे गोरखपुर की यात्रा पर निकले, उस समय उनके पास एक सौ तीस रुपए थे। लखनऊ पहुँचते-पहुँचते सत्तावन रुपए रह गये। लखनऊ से गोरखपुर की यात्रा में छह रुपए और खर्च हो गये और श्रीमान् पोद्दार के घर पहुँचने में रिक्शे के किराए में ८० पैसे और निकल गये।

लेकिन यात्रा पर जो खर्च हुआ, वह ठीक साबित हुआ। भक्तिवेदान्त स्वामी ने श्रीमान् पोद्दार को हितशरण शर्मा का दिया हुआ परिचय-पत्र दिया और फिर अपनी पाण्डुलिपि दिखाई। पाण्डुलिपि का संक्षिप्त अवलोकन करने के बाद श्रीमान् पोद्दार इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वह उच्च कोटि का ग्रंथ था और उसको समर्थन मिलना चाहिए। श्री ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी कृत *श्रीमद्भागवत* के प्रकाशन में व्यय करने के लिए वे दिल्ली के डालमिया ट्रस्ट को चार हजार रुपए का अनुदान भेजने को राजी हो गये।

भारतीय प्रकाशक किसी पुस्तक की छपाई का कार्य शुरू करने के पहले पूरा भुगतान नहीं मांगते, यदि लागत का बहुत कुछ अंश अग्रिम धनराशि के रूप में उन्हें प्राप्त हो जाये। पुस्तक की छपाई पूरी हो जाने पर और जिल्द बंध जाने पर ग्राहक, जिसने पूरा भुगतान नहीं किया है, जमा की गई धनराशि के अनुपात में पुस्तक की प्रतियां ले जाता है और उन्हें बेचने के बाद उनके लाभ से और प्रतियां खरीद लेता है। भक्तिवेदान्त स्वामी ने अनुमान लगाया कि एक खंड को छापने में सात हजार रुपए का खर्च आयेगा। इस तरह अभी तीन हजार रुपए की कमी थी। दिल्ली में घर-घर घूमकर उन्होंने कुछ सौ रुपए और इकट्ठे किये। तब वे राधा प्रेस के मालिक हितशरण शर्मा के पास गये और उन्हें छपाई शुरू करने को कहा। श्रीमान् शर्मा राजी हो गये।

राधा प्रेस पहले दो अध्यायों का अधिकांश भाग छाप चुका था; तब भक्तिवेदान्त स्वामी ने आपत्ति उठाई कि टाइप यथेष्ठ बड़ा नहीं है। वे बारह प्वाइंट का टाइप चाहते थे, लेकिन राधा प्रेस के पास केवल दस प्वाइंट का टाइप था। इसलिए श्रीमान् शर्मा छपाई का काम एक दूसरे मुद्रक श्रीमान् गौतम शर्मा के ओ. के. प्रेस को देने को राजी हो गये।

भक्तिवेदान्त स्वामी के *श्रीमद्भागवत* के पहले स्कन्ध के पहले खंड के चार पृष्ठ ओ. के. प्रेस ने बीस-छब्बीस इंच साइज के कागज के एक पन्ने पर एक ही ओर दो बार छाप दिए। तब यह तय हुआ कि पूरी ग्यारह सौ प्रतियाँ मुद्रित करने से पहले प्रेस प्रूफ देगा जिसे भक्तिवेदान्त स्वामी देखेंगे। फिर प्रूफ की गलतियों को सही करके प्रेस दूसरा प्रूफ छापेगा। उसे भी भक्तिवेदान्त स्वामी पढ़ेंगे और प्रायः दूसरे प्रूफ में भी गलतियाँ मिल सकती थीं; इसलिए प्रेस तीसरा प्रूफ देगा। यदि तीसरे प्रूफ में कोई गलती न हुई, तो अन्तिम पृष्ठ छपेंगे। इस गति से चलने में भक्तिवेदान्त स्वामी को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में कागज मंगाने में आसानी हुई। दो सप्ताह पहले सूचना भेजकर वे एक बार छह से दस रीम तक कागज मंगाते थे।

जब पहले खंड की छपाई चल रही थी, उस समय भी भक्तिवेदान्त स्वामी अन्तिम अध्यायों को लिखने में लगे थे। जब ओ. के. प्रेस में प्रूफ तैयार हो जाते, तो वे उन्हें लेकर छिप्पीवाड़ा के अपने कमरे में लौट जाते और वहाँ उन्हें सही करते और तब उन्हें प्रेस को वापस दे आते। कभी-कभी चौदह-वर्षीय कांतवेदी, जो अपने मां-बाप के साथ छिप्पीवाड़ा मन्दिर में रहता था, प्रेस और स्वामी के बीच प्रूफ ले आने-ले जाने का कार्य कर देता था। लेकिन १९६२ ई. के अन्तिम महीनों में भक्तिवेदान्त स्वामी आमतौर पर स्वयं ही ओ. के. प्रेस प्रतिदिन जाया-आया करते थे।

छिप्पीवाड़ा की जन-संकुल तंग गलियों से निकलकर वे जल्दी ही जामा मस्जिद के पास से गुजरने वाली सड़क पर पहुँचते और वहाँ से चलकर शोर-गुल और भारी यातायात

से भरी चावड़ी बाजार की सड़क पर निकलते। वहाँ कागज का बड़ा बाजार था, जहाँ कंधे में रस्सी लपेटे मजदूर लोहे के छोटे पहियों वाली मजबूत काठ की गाड़ियों को, जिन पर कागज की गाँठे लदी होती थीं, खींचते दिखाई देते। दो ब्लाकों में कागज के व्यवसायी ही फैले थे—हरीराम गुप्त एंड कम्पनी, रूप चन्द्र एंड संस, बंगाल पेपर मिल कम्पनी लिमिटेड, यूनीवर्सल ट्रेडर्स, जनता पेपर मार्ट, इत्यादि। बगल की गलियों में भी एक के बाद एक इन्हीं का फैलाव था।

दुकानों के अगवाड़े रंग-बिरंगे, किन्तु अव्यवस्थित दिखाई देते थे। पैदल यातायात इतना अनियंत्रित था कि किसी का एक क्षण भी सड़क पर रुक जाना यातायात में व्यवधान का कारण बन जाता था। ठेले और रिक्शे, कागज और दूसरा सामान गलियों में इधर से उधर ले जाने में लगे रहते थे। कभी-कभी कोई मजदूर सिर पर कागज की परतों का भारी बोझ लिए, जो दोनों ओर लटकता रहता था, लिए तेजी से निकल जाता था। यातायात तेज था और लापरवाही से या मंद गति से पैदल चलने वालों को किसी मजदूर के सिर पर या गाड़ी पर रखे सामान के बाहर निकले हुए भाग से धक्का लग जाने का खतरा बना रहता था। कभी कभी सड़क की पटरी पर बैठा कोई आदमी कोयले के बड़े टुकड़ों को बेचने के लिए छोटे टुकड़ों में तोड़ता दिखाई देता था। कोनों में बनी सिगरेट और पान की छोटी दुकानों पर ग्राहकों की थोड़ी भीड़ लगी रहती। दुकानदार पान के पत्तों पर तेजी से पान के मसाले बिखेर देता था और ग्राहक पान मुँह में चबाता हुआ और लाल रंग का पीक थूकता हुआ गली में आगे बढ़ जाता था।

ऐसे वातावरण में, जहाँ चावड़ी बाजार के व्यावसायिक इलाके में झोंपड़ा-झुग्गी के जीवन का संगम-सा था और खतरे से भरी सड़कों में बच्चे खेल में मग्न दिखाई देते, भक्तिवेदान्त स्वामी एक साधु-स्वभाव और दृढ़-निश्चय पुरुष मालूम पड़ते थे। कोठरियों, टाइलें बेचने वालों, गल्ले की दुकानों, मिठाई की दुकानों और छापाखानों को पार करते हुए वे आगे बढ़ते जाते। उनके सिर के ऊपर बिजली के तार फैले होते, कबूतर उड़ते रहते और कोठरियों के ऊपर के बारजों में सूखते कपड़े लटके रहते। अन्त में एक छोटी मस्जिद को पार करके वे सीधे ओ. के. प्रेस पहुँचते। वे सही किये हुए प्रूफ लेकर वहाँ पहुँचते, इस उत्सुकता के साथ कि मुद्रण-कार्य की प्रगति कैसी हो रही है।

• • •

चार महीने बाद जब पुस्तक की छपाई पूरी हो गई और प्रेस के फर्श पर उसकी परतों का ढेर जमा हो गया, तो श्रीमान् हितशरण शर्मा ने उन्हें जिल्दसाज के यहाँ भिजवाया। जिल्दबन्दी पुराने ढंग से हाथ द्वारा की जाती थी और उसमें एक महीना और लग गया।

भक्तिवेदान्त स्वामी हररोज जाया करते और काम देखा करते। एक छोटे-से कमरे में जिल्दसाज पंक्ति में बैठे होते थे और उनके चारों ओर छपे हुए कागजों का ढेर लगा रहता था। पहला आदमी एक छपी हुई लम्बी शीट को उठाता था, जल्दी से उस की दो तहें करता था और दूसरे आदमी के पास उसे बढ़ा देता था, जो आगे का कार्य पूरा करता था। पन्नों को मोड़ा जाता था, सिला जाता था, इकट्ठा किया जाता और तब उन्हें शिकंजे में रखकर हथौड़ी से ठोंका जाता था, फिर हाथ की आरी से काटकर उनके तीनों किनारों को बराबर किया जाता था और चिपकाया जाता था। इस तरह थोड़ा थोड़ा करके पुस्तक अन्त में कड़ी जिल्द के लिए तैयार होती थी।

ओ. के. प्रेस और जिल्दसाज के यहाँ जाने के अतिरिक्त भक्तिवेदान्त स्वामी कभी कभी बस द्वारा, यमुना के पार, श्रीमान् हितशरण शर्मा के राधा प्रेस भी जाया करते थे। राधा प्रेस में पुस्तक के लिए एक हजार आवरण या जैकट छप रहे थे।

हितशरण शर्मा : *स्वामीजी यत्र-तत्र जाते रहते थे। जो कुछ भी वे इकठ्ठा कर पाते थे, उसे जमा कर देते और ले लेते थे। और इधर-उधर की यात्राओं में वे काफी लोगों से मिलते थे। मुझसे वे बराबर कहा करते कि जो कुछ हो सके मैं शीघ्र से शीघ्र करूँ। वे बड़ी शीघ्रता में होते थे। वे कहा करते थे, "समय निकल रहा है, समय भाग रहा है, शीघ्रता से उसे कर डालो।" वे मुझसे चिढ़ भी जाते और चाहते थे कि मैं उनका काम सबसे पहले करूँ। लेकिन मैं डालमिया का नौकर था और उनसे कहता, "आपका काम मेरे लिए दूसरे नम्बर पर है।" किन्तु वे कहते थे, "आपने मेरे दो दिन खराब कर दिए हैं, यह क्या है, शर्माजी? मैं यहाँ इस समय आ रहा हूँ। मैंने सुबह आपसे यह काम करने को कहा था, और आपने इसे अभी भी नहीं किया है।" मैं उत्तर देता, "दिन में मुझे समय नहीं मिलता।" तब वे कहते, "तो आपने मेरा पूरा दिन बरबाद कर दिया है।" इस तरह वे मुझ पर बहुत दबाव डाला करते। यह उनका स्वभाव था।*

पुस्तक की जिल्द, पकी हुई ईंट के रंग की, लाल थी और उसका नाम सुनहरे अक्षरों में छपा था। आवरण पृष्ठ के डिजाइन की कल्पना भक्तिवेदान्त स्वामी ने स्वयं की थी और एक युवा बंगाली कलाकार से, जिसका नाम सलित था, उसे पूरा कराया था। आवरण पृष्ठ पर समस्त आध्यात्मिक और भौतिक जगत का चित्रण था। सामने के पृष्ठ पर गुलाबी रंग का कमल था और उसके व्यूह में सामने वृन्दावन में लीला-मग्न राधा-कृष्ण अंकित थे; सामने सहयोगियों के साथ गाते और नाचते हुए भगवान् चैतन्य थे। कृष्ण के कमलासन से पीत वर्ण की प्रकाश की किरणें निकल रही थीं और उन किरणों के वैभवपूर्ण आलोक में आध्यात्मिकता के अनेकों ग्रह थे, जो कई सूर्यों की भाँति लग रहे थे। हर ग्रह के मध्य में चतुर्भुजी नारायण की विभिन्न आकृति थीं। हर आकृति के नीचे उनका नाम त्रिविक्रम,

केशव, पुरुषोत्तम, आदि अंकित था। सामने के आवरण पृष्ठ के निम्न भाग में एक अण्डाकार आकृति में चित्रित महाविष्णु भौतिक जगतों को अपने श्वास से निकट कर रहे थे। आवरण पृष्ठ के भीतरी भाग में भक्तिवेदान्त स्वामी द्वारा पूरे चित्रण की व्याख्या मुद्रित थी।

छपाई और जिल्दबन्दी पूरी होने पर ग्यारह सौ प्रतियाँ तैयार हुईं। भक्तिवेदान्त स्वामी को सौ प्रतियाँ मिलीं। शेष मुद्रक को रखनी थीं। सौ प्रतियों की बिक्री से भक्तिवेदान्त स्वामी को मुद्रक और जिल्दसाज का ऋण चुकाते रहना था; उसके बाद उन्हें और प्रतियाँ मिलने वाली थीं। यह क्रम जारी रहने को था, जब तक उनका पूर्ण ऋण न चुक जाये। उनकी योजना थी कि उसके बाद, पहले संस्करण के लाभ से दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जाये और दूसरे के लाभ से तीसरा संस्करण।

कांतवेदी पुस्तक की पहली एक सौ प्रतियाँ लाने के वास्ते गया। उसने एक आदमी भाड़े पर किया, जिसने पुस्तकों को बड़े-बड़े टोकरों में रखा और फिर उन टोकरों को अपनी हाथगाड़ी में रखकर वह उसे सड़कों पर खींचता हुआ छिप्पीवाड़ा मन्दिर ले गया, जहाँ भक्तिवेदान्त स्वामी ने उन्हें अपने कमरे में एक बेंच पर रख दिया।

• • •

भक्तिवेदान्त स्वामी अपनी पुस्तकें बेचने के लिए स्वयं अकेले ही जाते और महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को उन्हें भेंट करते। डॉक्टर राधाकृष्णन, जिन्होंने उनसे मिलना स्वीकार किया था, इस बात के लिए राजी हो गये कि वे पुस्तक पढ़कर उस पर अपनी सम्मति लिखेंगे। हनुमान प्रसाद पोद्दार पहले व्यक्ति थे जिसने पुस्तक की अनुकूल समीक्षा लिखी :

> मेरे लिए यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि मेरा एक चिर-वांछित स्वप्न इस प्रकाशन से पूरा हुआ है और भविष्य के प्रकाशनों से पूरा होने जा रहा है। मैं भगवान् को धन्यवाद देता हूँ कि उनके अनुग्रह से यह प्रकाशन सम्भव हुआ है।

भक्तिवेदान्त स्वामी दिल्ली के बड़े-बड़े पुस्तकालयों, स्कूलों और विश्वविद्यालयों में गये, जहाँ पुस्तकालयाध्यक्षों ने उन्हें "शान्त सुस्थिर" "उदात्त" "विनम्र" और "विद्वान" पाया, जिनसे "एक विशेष प्रकार की आभा" फूट रही थी। पैदल यात्रा करते हुए वे सारी दिल्ली के स्कूलों के प्रशासनिक कार्यालयों में गये और दिल्ली के चालीस से अधिक स्कूलों में प्रतियाँ दीं। शिक्षा-मंत्रालय ने (जिसने इसके पहले उन्हें सहायता देने से इनकार

कर दिया था) देश के चुने हुए विश्वविद्यालयों और संस्थागत पुस्तकालयों के लिए पचास प्रतियाँ खरीदने का आदेश दिया। मंत्रालय ने उन्हें डाक और पैकिंग व्यय के अतिरिक्त छह सौ रुपए दिए और भक्तिवेदान्त स्वामी ने निर्धारित पुस्तकालयों को पुस्तकें भेज दी। संयुक्त राज्य के दूतावास ने, अमेरिका की कांग्रेस लाइब्रेरी के माध्यम से अमेरिका में वितरण के लिए अठारह प्रतियाँ खरीदी।

संस्थाओं में पुस्तक की प्रतियाँ तेजी से बिकीं, लेकिन बाद में बिक्री मंद पड़ गई। एकमात्र एजेंट के रूप में भक्तिवेदान्त स्वामी को अब कुछ प्रतियाँ बेचने के लिए घंटों लगाने पड़ते। वे दूसरा संस्करण छापने को व्यग्र थे, लेकिन जब तक पहले संस्करण से काफी धन न आ जाये, वे छाप नहीं सकते थे। इस बीच वे अनुवाद करने और तात्पर्य लिखने में लगे रहे। इतने अधिक खंड लिखना बहुत बड़ा काम था और उसमें कई वर्ष लगने वाले थे। और इस गति से, जबकि बिक्री बहुत मंद थी, अपने जीवनकाल में वे कार्य को पूरा नहीं कर पाएँगे।

यद्यपि पुस्तक के प्रकाशन में भाग लेने वाले बहुत से लोग थे और ऐसे भी बहुत थे, जो उसके ग्राहक हो गए थे, लेकिन योजना की सफलता और विफलता की अनुभूति करने वाले केवल एक भक्तिवेदान्त स्वामी थे। यह योजना उनकी थी और वे ही इसके लिए जिम्मेदार थे। कोई ऐसा नहीं था, जो चाहता था कि वे तेजी से लिखें और न किसी की माँग थी कि उनका लिखा हुआ प्रकाशित हो। जब बिक्री इक्की-दुक्की रह गई, तब भी ओ. के. प्रेस के प्रबन्धकों को कोई तकलीफ नहीं हुई; वे तो उन्हें शेष प्रतियाँ तब देंगे, जब उनकी कीमत मिल जायेगी। और चूँकि ओ. के. प्रेस से दूसरा खंड छपवाने का भार भक्तिवेदान्त स्वामी पर ही था, इसलिए यह जिम्मेदारी उनकी थी कि इधर-उधर जाकर पहले खंड की जितनी प्रतियां हो सके, बेचें। हनुमान प्रसाद पोद्दार ने तो चालू ढंग से पुस्तक की प्रशंसा कर दी थी। हितशरण शर्मा का ध्यान उस पर तब जाता था, जब वे दिन-भर श्रीमान् डालमिया का दिन भर का कार्य कर चुकते थे। छिप्पीवाड़ा में रहने वाले लड़के के लिए पुस्तक का महत्त्व इतना ही था कि उसे उसके सम्बन्ध में कभी इधर-उधर जाना पड़ता था। कागज-विक्रेताओं के लिए उसका तात्पर्य केवल एक छोटा-मोटा सौदा था। डॉ. राधाकृष्णन के राष्ट्रीय राजनीति और हिन्दू-दर्शन-विवेचन से भरे जीवन में पुस्तक एक बहुत नगण्य और शीघ्र विस्मरणीय घटना थी। किन्तु भक्तिवेदान्त स्वामी को, जिन्होंने पूरे मनोयोग से भागवत तैयार किया था, उससे परमानन्द की अनुभूति हुई और उन्हें विश्वास हो गया कि कृष्ण उन पर प्रसन्न हैं। लेकिन उनका इरादा यह नहीं था कि भागवत उनका निजी मामला बनकर रह जाये। कलियुग के विकारों के लिए भागवत एक अत्यन्त आवश्यक औषध के समान था और यह सम्भव नहीं था कि केवल एक व्यक्ति सब पर

उसका प्रयोग कर सके। फिर भी भक्तिवेदान्त स्वामी अकेले थे और उन्हें अपने गुरु और भगवान् कृष्ण की सेवा करने में नितान्त सुख और संतोष अनुभव हुआ। इस प्रकार अपार आध्यात्मिक निराशा और प्रसन्नता को साथ लिए अपनी इच्छा को बलवती बनाए हुए वे अकेले ही अपने कार्य में लगे रहे।

उनके आध्यात्मिक गुरु, पूर्वगामी आध्यात्मिक गुरुओं और वैदिक धर्मशास्त्रों सबसे उन्हें यही आश्वासन मिला कि वे सही मार्ग पर हैं। यदि किसी को भागवत मिलेगा और वह उसका एक पृष्ठ भी पढ़ लेगा, तो सम्भव है कि वह भगवान् चैतन्य के आन्दोलन में भाग लेने को तैयार हो जाये। यदि कोई व्यक्ति गम्भीरतापूर्वक पुस्तक का अध्ययन करेगा, तो आध्यात्मिक जीवन में उसकी आस्था हो जायेगी। पुस्तक की जितनी ही अधिक प्रतियाँ वितरित होंगी, कृष्णभावनामृत को लोग उतना ही अधिक समझ सकेंगे। और यदि वे कृष्णभावनामृत को समझ जायेंगे, तो सारी समस्याओं से वे मुक्त हो जायेंगे। पुस्तक बेचना वास्तविक रूप से प्रचार करना था। भक्तिवेदान्त स्वामी यह चाहते थे, भले ही मन्दिरों के निर्माण या अनुयायी बनाने के कार्य को क्षति पहुँचे। भागवत से अच्छा प्रचार कौन कर सकता था? निश्चय ही जो व्यक्ति पुस्तक को खरीदने में सोलह रुपए व्यय करेगा, वह कम से कम उसका अवलोकन करने के लिए तो समय निकालेगा ही।

• • •

बाद के महीनों में भक्तिवेदान्त स्वामी को और भी अनुकूल समीक्षाएं प्राप्त हुईं। प्रतिष्ठित "अद्यर लाइब्रेरी बुलेटीन" ने पूरी समीक्षा प्रकाशित की और "सम्पादक द्वारा विषय के विस्तृत और गहरे अध्ययन को रेखांकित किया।" अन्त में उसने लिखा कि "इस ग्रंथ के अगले खंडों की प्रतीक्षा उत्सुकता से की जा रही है।"

उनके विद्वान गुरुभाइयों ने भी ग्रंथ की प्रशस्तियाँ लिखीं। इंस्टीट्यूट आफ ओरियंटल फिलासफी, वृन्दावन के रेक्टर स्वामी बान महाराज ने लिखा :

> आपके साहसपूर्ण और उपयोगी कार्य के लिए मेरे पास प्रशंसा के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यदि आप सम्पूर्ण ग्रंथ को पूरा कर सकें, तो आपसे प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज, भगवान् चैतन्य महाप्रभु और देश की बहुत बड़ी सेवा होगी। यह आप इसे करें और आश्वस्त रहें कि साधनों की कमी नहीं होगी।

भक्तिसारंग महाराज ने अपनी *सज्जन तोषणी* में पूरी समीक्षा प्रकाशित की :

> हमें आशा है कि श्रीमद्‌भागवत् का यह विशिष्ट अंग्रेजी संस्करण सभी द्वारा पढ़ा जायेगा और इस प्रकार सर्वसाधारण में व्याप्त आध्यात्मिक दारिद्रिय का हमेशा के लिए लोप हो जायगा। जब हमें उसकी अतीव आवश्यकता है, उसी समय भक्तिवेदान्त स्वामी ने हमें उपयुक्त वस्तु दी है। हमारी संस्तुति है कि इस ग्रंथ का गहन अध्ययन हर एक करे।

उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्रीविश्वनाथ दास ने सिफारिश की कि सभी विचारशील व्यक्तियों को ग्रंथ का अध्ययन करना चाहिए। और "इकनामिक रिव्यू" ने इतना महान् कार्य सम्पादित करने के लिए लेखक की सराहना की :

> जबकि न केवल भारत के वरन् पश्चिम के लोगों को भी घृणा और विडम्बना से भरे इस दूषित वातावरण का परिष्कार करने वाले प्रेम और सत्य के गुणों की आवश्यकता है, इस प्रकार के ग्रंथ का प्रभाव उत्थानकारी और संशोधनकारी होगा।

भारत के उपराष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसेन ने लिखा :

> मैंने बड़ी रुचि से और लाभान्वित होते हुए आपका ग्रंथ श्रीमद्‌भागवत पढ़ा है। जिस कृपाभाव से प्रेरित होकर आपने यह ग्रंथ मुझे भेंट किया है, इसके लिए मैं पुनः आपको धन्यवाद देता हूँ।

ग्रंथ की जो अनुकूल समीक्षाएँ आईं, उनसे यद्यपि मुद्रकों का भुगतान नहीं हो सकता था, तो भी इतना तो स्पष्ट था कि लोगों ने उसे पसन्द किया था। ग्रंथ बहुमूल्य था। अगले खंडों से उसकी प्रतिष्ठा में और भी वृद्धि होगी। कृष्ण-कृपा से भक्तिवेदान्त स्वामी ने दूसरे खंड का भी बहुत-सारा अनुवाद और तात्पर्य पूरा कर लिया था। जब पहला खंड छप रहा था, उसके अन्तिम सप्ताहों में वे दूसरे खंड लिखने में दिन-रात लगे थे। ग्रंथ में परमेश्वर श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन था और उसके लिए कई खंडों की आवश्यकता थी। वे कृष्ण का गुण-गान करने को प्रेरित थे और अनेकानेक ग्रंथों में उनका वर्णन करना चाहते थे। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का कथन था कि संसार के सारे मुद्रण-गृह भी आध्यात्मिक लोक तथा कृष्ण की महिमाओं का वर्णन उतनी तेजी से नहीं छाप सकते थे, जितनी तेजी से वे सच्चे भक्तों द्वारा प्राप्त किये जा रहे थे।

•••

भक्तिवेदान्त स्वामी ने दूसरे खंड पर कई महीने गहन लेखन-कार्य करने के विचार से वृन्दावन लौट जाने का निर्णय लिया। राधा-दामोदर मन्दिर में उनका मुख्य कार्य यही था। दिव्य साहित्य की रचना के लिए वृन्दावन सर्वोत्तम स्थान था। पहले के वैष्णव आचार्यों ने इसे सिद्ध कर दिया था। सामान्य आराम से रहते हुए, थोड़ा विश्राम और भोजन करते हुए, वे दूसरे खंड के श्लोकों के अनुवाद और तात्पर्य लिखने में लगातार लगे रहे। वे सोचते थे कि पाण्डुलिपि के काफी पृष्ठ इकट्ठे हो जाने पर कुछ महीनों बाद वे फिर दिल्ली लौटेंगे और प्रकाशन की दुनिया में प्रविष्ट करेंगे।

पहले खंड में वे प्रथम स्कन्ध के साढ़े छह अध्यायों को पूरा कर चुके थे। दूसरा खंड सातवें अध्याय के आठवें श्लोक से ३६५ पृष्ठ पर आरम्भ होता था। भक्तिवेदान्त स्वामी ने अपने तात्पर्य में लिखा कि *श्रीमद्भागवत* सच्चे मन से आत्म-सिद्धि में लीन परमहंसों के लिए है। तो भी यह सांसारिक लोगों के हृदयों पर गहरा प्रभाव करता है। सांसारिक लोग इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने में लगे रहते हैं। लेकिन इस वैदिक साहित्य में ऐसे लोगों को भी अपने सांसारिक रोगों से छुटकारे का उपाय मिल सकेगा।

• • •

भक्तिवेदान्त स्वामी दूसरे खंड के प्रकाशन के लिए धन-संग्रह करने के उद्देश्य से दिल्ली लौटे। जब वे किसी संभाव्य अनुदानकर्ता से मिलते, तो वे उसे ग्रंथ का पहला खंड और उसके सम्बन्ध में प्राप्त अनुकूल आलोचनाएँ दिखाते और कहते कि वे अनुदान अपने जीवन-निर्वाह के लिए नहीं वरन् महत्त्वपूर्ण साहित्य के प्रकाशन के लिए माँग रहे हैं। यद्यपि पहले खंड के लिए मिले सारे अनुदानों का जोड़ श्रीमान् पोद्दार द्वारा दिए गये चार हजार रुपये के बराबर भी नहीं था, लेकिन दूसरे खंड के लिए एल. एंड एच. शूगर फैक्टरी के एक अधिकारी ने ही पाँच हजार रुपए का अनुदान दिया।

भक्तिवेदान्त स्वामी को हितशरण शर्मा से प्रकाशन-निरीक्षक के रूप में संतोष नहीं था। यद्यपि वे अपने व्यवसाय में विशेषज्ञ माने जाते थे, लेकिन उनके कारण प्रायः देर हुई थी और कभी कभी भक्तिवेदान्त स्वामी से पूछे बिना ही वे गौतम शर्मा को अपनी राय दे दिया करते थे। नकद पैसा देने वाले किसी ग्राहक के आ जाने पर, पहले खंड की छपाई का काम धीमा हो जाता था और कभी-कभी बन्द भी हो जाता था। भक्तिवेदान्त स्वामी की शिकायत थी कि यह हितशरण की गलती थी कि वे ओ. के. प्रेस को समय पर पैसे नहीं देते थे। भक्तिवेदान्त स्वामी ने तय किया कि दूसरे खंड की छपाई में वे ओ. के. प्रेस से सीधे लेन-देन करेंगे और छपाई के कार्य का निरीक्षण स्वयं करेंगे। उन्होंने गौतम शर्मा से बात की और आंशिक भुगतान करने का प्रस्ताव रखा। यद्यपि पहले खंड की अधिकतर

प्रतियाँ अब भी प्रेस में पड़ी थीं, तथापि भक्तिवेदान्त स्वामी चाहते थे कि दूसरे खंड की छपाई ओ. के. प्रेस आरम्भ कर दे। गौतम शर्मा ने काम स्वीकार कर लिया।

यह बात १९६४ ई. के शुरू की है, जब दूसरा खंड पहले खंड की तरह ही प्रेस में पहुँचा। किन्तु इस बार भक्तिवेदान्त स्वामी काम को आगे बढ़ाने में अधिक क्रियाशील थे। देर न हो, इसलिए उन्होंने कागज की खरीददारी स्वयं की। कागज-मण्डी के केन्द्र में वे सिद्धोमल एंड संन्स पेपर मर्चेंट्स के यहाँ कागज का चुनाव करते और खरीद करने का आर्डर देते और उसे ओ. के. प्रेस भिजवाने का प्रबन्ध करते। यदि खरीद का आर्डर बड़ा होता, तो वे उसे ठेले से भिजवाते; छोटी खरीद वे रिक्शा से भिजवाते या भार-वाहकों के सिर पर रखकर ले जाते।

दूसरे खंड की प्रस्तावना में भक्तिवेदान्त स्वामी ने वृन्दावन में रहते हुए दिल्ली में कार्य करने की जो स्पष्ट विसंगति थी, उसे प्रकट किया।

"धन कमाओ और मौज-मस्ती का जीवन बिताओ, जैसाकि आमतौर पर लोग कर रहे हैं, उसी तरह लाभदायक क्रियाकलापों जैसा अपना धंधा भी हो गया है, यद्यपि हम सांसारिकता का त्याग कर चुके हैं। लोग देखते हैं कि हम *श्रीमद्भागवत* प्रकाशन का कार्य आगे बढ़ाने के लिए नगरों में, सरकारी कार्यालयों में, बैंकों में और अन्य स्थानों में जा-आ रहे हैं। लोग यह भी देखते हैं कि अपने आवास, वृन्दावन से दूर हम प्रेस में, कागज की मंडी में और जिल्दसाजों के बीच आते-जाते हैं और इस तरह वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, जो प्रायः गलत होता है कि साधु के वेश में हम भी वही धंधा कर रहे हैं।

"परन्तु वास्तव में दोनों प्रकार के क्रियाकलापों में बहुत बड़ा अन्तर है। हमारा धंधा सांसारिक सुख-भोग के लिए व्यवसाय करना नहीं है। प्रत्युत हमारा विनम्र प्रयास यह है कि हम श्री भगवान् की कीर्ति का प्रसार करें, जिसकी इस समय लागों को इतनी अधिक आवश्यकता है।"

आगे उन्होंने वर्णन किया कि पूर्वकाल में, पचास साल पहले तक भी, समाज के सम्पन्न लोग पंडितों से भागवत की हस्तलिखित प्रतियाँ छपवाते या तैयार कराते थे और तब उन प्रतियों को भक्तों और जन-साधारण में बाँटते थे। लेकिन तब से समय बदल गया है। "वर्तमान में समय इतना बदल गया है कि हमें भारत के एक सबसे बड़े उद्योगपति से प्रार्थना करनी पड़ी थी कि वह एक सौ प्रतियाँ क्रय करके लोगों में वितरित कर दे, लेकिन उस बेचारे ने असमर्थता प्रकट की। हमारी इच्छा थी कि इस *श्रीमद्भागवत* के प्रकाशन का वास्तविक व्यय देने को कोई आगे आये और उसकी प्रतियाँ संसार के उच्चस्थ भले लोगों को निष्शुल्क वितरित करवा दे। लेकिन अभी तक समाजोत्थान का यह कार्य करने को कोई तैयार नहीं हुआ है।"

शिक्षा मंत्रालय और शिक्षा निदेशक को, संस्थाओं और पुस्तकालयों को प्रतियाँ वितरित करने के लिए धन्यवाद देने के बाद भक्तिवेदान्त स्वामी ने पाठक वर्ग के सामने अपनी कठिनाई फिर रखी, "समस्या यह है कि हमारे लिए कुछ धन आवश्यक है, जिससे हम यह महान् परियोजना पूर्ण कर सकें। विक्री से जो पैसा आता है, उसे हम कार्य को आगे बढ़ाने में लगाते हैं, न कि अपने सुख-चैन में। लाभदायक कार्यों में और हमारे कार्य में यही सबसे बड़ा अन्तर है और इस कार्य के लिए हमें एक व्यवसायी की तरह ही हर एक सम्बन्धित व्यक्ति के पास जाना पड़ता है। व्यवसायी बनने में कोई हानि नहीं है, यदि यह कार्य भगवान् के लिए किया जाता है, ठीक वैसे ही जैसे अर्जुन या हनुमान सरीखे हिंसक योद्धा बनने में कोई हानि नहीं है, यदि ऐसा हिंसा-कार्य परम भगवान् की इच्छापूर्ति के लिए किया जाता है।

"अत: यद्यपि हम हिमालय में नहीं है, यद्यपि हम व्यवसाय की बात करते हैं, यद्यपि हम रुपए-पैसे का लेन-देन करते हैं, किन्तु चूँकि हम भगवान् के शत-प्रति-शत सेवक हैं और उनकी कीर्ति का सन्देश चारों ओर प्रसारित करने में लगे हैं, इसलिए हम निश्चय ही माया के अजेय गतिरोध को पार करेंगे और भगवान् के देदीप्यमान लोक में पहुँचेंगे और पूर्ण आनन्द और ज्ञान में भगवान् के आमने-सामने उनकी दिव्य सेवा में लगेंगे। इस वस्तु-स्थिति के सम्बन्ध में हम पूर्ण आश्वस्त हैं और हम अपने असंख्य पाठकों को भी विश्वास दिलाना चाहते हैं कि भगवान् की कीर्ति सुनने-मात्र से वे भी वैसा ही फल प्राप्त करेंगे।"

• • •

श्रीमद्भागवत के दूसरे खंड की आरम्भिक प्रतियाँ छपकर आईं। वह खंड चार सौ पृष्ठों में ईंट जैसे रंग के कपड़े की जिल्द में बँधा था और उस पर आवरण पृष्ठ पहले खंड जैसा ही लगा था। भक्तिवेदान्त स्वामी संस्थाओं, विद्वानों, राजनीतिज्ञों और पुस्तक-विक्रेताओं का चक्कर लगाने निकल पड़े। दिल्ली के एक पुस्तक-विक्रेता, डॉ. मनोहरलाल जैन को इस खंड को बेचने में विशेष सफलता मिली।

मनोहरलाल जैन : *वे मेरे पास अपनी पुस्तकों की विक्री के लिए आते थे। वे प्राय: आते थे और मेरे साथ एक-दो घंटे बातें करते थे। उनके पास अन्य कोई धन्धा न था, सिवाय इसके कि उनकी पुस्तकों की अधिक से अधिक विक्री हो। हम उन कठिनाइयों के बारे में बातें करते, जिनका वे सामना कर रहे थे। अन्य बहुत से विषयों पर भी बातें होतीं—जैसे योग, वेदान्त और जीवन के धार्मिक पक्ष। उनकी समस्या अपनी पुस्तक के वितरण की थी, क्योंकि वह एक बड़ी रचना थी। उनकी योजना उसे कई खंडो में प्रकाशित करने की थी। स्वाभाविक रूप से मैंने उन्हें बताया कि यह यहाँ के किसी एक*

प्रकाशक या पुस्तक-विक्रेता के लिए सम्भव नहीं था कि वह पूरी पुस्तक प्रकाशित करे और उसमें पैसा लगाए। यह उनके लिए थोड़ी निराशा की बात थी, क्योंकि वे आगे के खंडों को प्रकाशित नहीं कर सकते थे।

लेकिन मेरी विक्री अच्छी थी, क्योंकि संस्कृत मूल-पाठ के साथ-साथ अँग्रेजी में यह सबसे अच्छा अनुवाद था। ऐसा कोई दूसरा संस्करण उपलब्ध नहीं था। लगभग दो-तीन वर्षों में मैंने डेढ़-दो-सौ प्रतियाँ बेच लीं। मूल्य बहुत कम था, केवल सोलह रुपए। उन्होंने समीक्षाएं निकालीं, और उनकी अच्छी बिक्री हुई। मूल्य उचित था और पुस्तक से पैसा कमाने में उनकी रुचि नहीं थी। वे अँग्रेजी में अनुवाद विदेशियों के लिए निकाल रहे थे। संस्कृत और अँग्रेजी दोनों पर उनका अच्छा अधिकार था। हम जब मिलते तो अंग्रेजी में बात करते और उनकी अँग्रेजी बहुत प्रभावोत्पादक थी।

वे चाहते थे कि मैं उनकी पुस्तक प्रकाशित करूँ, लेकिन मेरे पास कोई प्रेस नहीं था और न ही धन था। मैंने उनसे स्पष्ट कहा कि मैं पुस्तक छाप नहीं सकूँगा, क्योंकि उसके एक-दो नहीं, बहुत से खंड थे। लेकिन किसी तरह उन्होंने प्रबन्ध कर लिया। मैंने उनका परिचय आत्माराम एंड संस से कराया। वे वहाँ भी जाया करते थे।

वे महान् गुरु, विचारक और महान् विद्वान थे। मुझे उनकी बात में आनन्द आता था। वे मेरे पास एक-दो घंटे, या जितना समय वे निकाल सकते थे, बैठते थे। कभी वे ग्यारह-बारह बजे पूर्वाह्न में आ जाते थे, कभी अपराह्न में। वे पैसे के लिए आते थे। "कितनी प्रतियाँ बिक गईं?" वे पूछते और मैं उन्हें पैसे अदा करता। वास्तव में, उस समय उनकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। वे केवल यह चाहते थे कि उनकी पुस्तकें हर पुस्तकालय में और ऐसी सभी जगहों को बेची जायें, जहाँ लोगों की रुचि उनमें हो।

हर महीने हम एक पुस्तक-सूची निकालते थे और उसमें मैं उनकी पुस्तक का विज्ञापन देता था। सारे विश्व भर से आर्डर आने लगे। इसलिए कम से कम मेरे लिए, पुस्तक की विक्री बढ़ रही थी। मैंने हिसाब लगाया कि यदि मैं पहले खंड की सौ प्रतियाँ बेच लेता हूँ, तो स्वाभाविक है कि दूसरे खंड की भी उतनी ही प्रतियाँ बिक जायेंगी। जो लोग पहला खंड खरीदते हैं, निश्चय ही, वे दूसरा खंड भी खरीदेंगे। खरीददार संस्थाएँ थीं और संस्थाएँ हमेशा पुस्तक का पूरा सेट रखना चाहेंगी। वे मेरे साथ विचार-विनिमय करते कि आगे के खंड कैसे निकाले जा सकते हैं और श्रीमद्‌भागवत में कुल कितने खंड होंगे। सम्पूर्ण माला निकालने की उनकी बड़ी अभिलाषा थी।

• • •

१९६४ ई. की जनवरी में भक्तिवेदान्त स्वामी को भारत के उपराष्ट्रपति जाकिर हुसेन

से साक्षात्कार का अवसर मिला। डॉ. जाकिर हुसेन ने, यद्यपि वे एक मुसलमान थे, भक्तिवेदान्त स्वामी के *श्रीमद्भागवत* की प्रशंसा लिखी थी। जब राष्ट्रपति भवन में डॉ. हुसेन ने *श्रीमद्भागवत* के रचयिता का हार्दिक स्वागत किया, तो भक्तिवेदान्त स्वामी ने भगवद्-भक्ति के सन्दर्भ में *श्रीमद्भागवत* के महत्त्व के बारे में बताया। लेकिन डॉ. हुसेन जानना चाहते थे कि भगवद्-भक्ति से मानवता का हित कैसे हो सकता है। शासक द्वारा साधु से पूछा गया यह प्रश्न दार्शनिक आशयों से भरा था, लेकिन उपराष्ट्रपति की व्यस्तताओं की सूची इतनी लम्बी थी कि भक्तिवेदान्त स्वामी को पूरा उत्तर देने का अवसर नहीं मिल सका। उपराष्ट्रपति के लिए यह साक्षात्कार उनकी गुण-ग्राहकता का एक संकेत-चिह्न था, जिसके द्वारा उन्होंने भारत की हिन्दू सांस्कृतिक सभ्यता के निमित्त कार्य करने वाले एक स्वामी को मान्यता दी। और भक्तिवेदान्त स्वामी ने विनम्र भाव से इस औपचारिकता को स्वीकार किया।

किन्तु बाद में, उन्होंने डॉ. हुसेन को एक लम्बा पत्र लिखकर उस प्रश्न का उत्तर दिया, जिसके लिए उनके संक्षिप्त साक्षात्कार में समय नहीं मिल पाया था। उन्होंने लिखा कि, "मुसलमान भी स्वीकार करते हैं कि अल्ला से बड़ा कोई नहीं है। ईसाई भी स्वीकार करते हैं कि ईश्वर सबसे महान् हैं।... मानव समाज को चाहिए कि ईश्वर के विधानों का पालन करे।" उन्होंने डॉ. हुसेन को भारत की महान् सांस्कृतिक निधि, वैदिक साहित्य का स्मरण कराया; मानवता के कल्याण के हित सर्वोत्तम कार्य यह होगा कि भारत सरकार व्यवस्थित ढंग से वैदिक साहित्य का प्रचार करे। *श्रीमद्भागवत* का जन्म भारत में हुआ था; संसार के हित में भारत का यह महत्त्वपूर्ण योगदान होगा।

• • •

मार्च १९६४ ई. में कृष्ण पंडित ने, जिन्होंने छिप्पीवाड़ा के राधा-कृष्ण मन्दिर में भक्तिवेदान्त स्वामी को स्थान दिया था, यह व्यवस्था की कि वे कुछ महीने निकट के रोशनपुर, नई सड़क के पड़ोस में स्थित श्री राधा वल्लभजी मन्दिर में रह सके। वहाँ वे अपना लिखने और प्रकाशन का कार्य जारी रख सकते थे; साथ ही कुछ व्याख्यान भी उन्हें देने थे। कृष्ण पंडित ने भक्तिवेदान्त स्वामी को निर्वाह के लिए लगभग पन्द्रह सौ रुपए दिए। भक्तिवेदान्त स्वामी श्री राधा वल्लभजी मन्दिर में पहुँचे तो वहाँ के प्रबन्धक ने सूचना प्रसारित की कि लोग "एक वैष्णव साधु की उपस्थिति का पूरा लाभ उठाएँ।" "निवासी आचार्य" के रूप में भक्तिवेदान्त स्वामी प्रातः और सायंकाल मन्दिर में व्याख्यान देते थे; इससे उनके लेखन और प्रकाशन के कार्य में कोई कमी नहीं आई।

• • •

जून में भक्तिवेदान्त स्वामी को प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री से मिलने का अवसर मिला। इसकी व्यवस्था एक धनी जौहरी, दौलतराम खन्ना ने की जो छिप्पीवाड़ा मन्दिर के एक ट्रस्टी थे और भक्तिवेदान्त स्वामी से वहाँ प्रायः मिल चुके थे। श्रीमान् खन्ना प्रधानमंत्री शास्त्री के पुराने मित्र थे; युवावस्था में वे दोनों एक साथ एक ही योग-क्लब में जाया करते थे। शास्त्रीजी के साथ इस भेंट की व्यवस्था उन्होंने भक्तिवेदान्त स्वामी पर अनुग्रह के रूप में की थी। उनका विचार था कि प्रधानमंत्री की भेंट एक सच्चे साधु से होनी चाहिए।

पार्लियामेंट भवन के उद्यान में प्रधानमंत्री औपचारिक रूप से बहुत से लोगों से मिल रहे थे। सफेद कुर्ता, धोती और नेहरू-टोपी धारण किये हुए तथा अपने सहायकों से घिरे हुए प्रधानमंत्री शास्त्री ने वयोवृद्ध साधु का स्वागत किया। चश्मा लगाए भक्तिवेदान्त स्वामी विद्वान प्रतीत हो रहे थे। आगे बढ़कर उन्होंने अपना, अपनी पुस्तक *श्रीमद्भागवत* का परिचय दिया। जब प्रधानमंत्री को उन्होंने प्रथम खंड की एक प्रति भेंट की, ठीक उसी समय जब लेखक और प्रधानमंत्री पुस्तक की ओर देखते हुए मुसकरा रहे थे, फोटोग्राफर ने उनका चित्र ले लिया।

दूसरे दिन भक्तिवेदान्त स्वामी ने प्रधानमंत्री को एक पत्र लिखा। उसका उत्तर उन्हें शीघ्र प्राप्त हुआ जो स्वयं प्रधानमंत्री द्वारा हस्ताक्षरित था :

> प्रिय स्वामीजी, आपके पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। मैं सचमुच बहुत आभारी हूँ कि आपने *श्रीमद्भागवत* की एक प्रति मुझे भेंट की। मैं मानता हूँ कि आप बहुमूल्य कार्य कर रहे हैं। यह बहुत अच्छा होगा कि सरकारी संस्थाओं के पुस्तकालयों में इस पुस्तक की प्रतियाँ खरीदी जायें।

भक्तिवेदान्त स्वामी ने प्रधानमंत्री को फिर लिखा और प्रार्थना की कि भारतीय संस्थाओं के लिए उनकी पुस्तकें खरीदी जायें। शिक्षा मंत्रालय के श्री. आर. के. शर्मा ने बाद में उत्तर दिया और पुष्टि की कि दूसरे खंड की पचास प्रतियाँ खरीदी जायँगी, ठीक वैसे ही जैसे पहले खंड की खरीदी गई थीं।

• • •

तीसरे खंड को पूरा करने पर ध्यान केन्द्रित करने के विचार से भक्तिवेदान्त स्वामी राधा-दामोदर मन्दिर में लौट गये। ये पहले स्कन्ध के आखिरी अध्याय थे, जिनमें कलियुग के आगमन के बारे में वर्णन था। कई श्लोकों में समाज के अधःपतन के विषय में भविष्यवाणी की गई थी और यह बताया गया था कि किस प्रकार महान् राजा परीक्षित

ने अपने कृष्ण-चेतना-सम्पन्न शासन द्वारा कलि के प्रभाव को रोका था। श्लोकों के तात्पर्य में भक्तिवेदान्त स्वामी ने स्पष्ट किया कि सरकार भ्रष्टाचार को नहीं रोक सकती, जब तक वह अधार्मिकता के चार मूलभूत सिद्धान्तों—मांस-भक्षण, अवैध यौनाचार, मद्यपान और द्यूत-क्रीड़ा—का निराकरण नहीं कर देती। "आप समाज के इन दुर्गुणों को केवल पुलिस की सतर्कता के संवैधानिक कानून बनाकर नहीं रोक सकते। वरन् आपको मानसिक रोग का समुचित उपचार करना होगा; इसके लिए ब्राह्मण संस्कृति या संयम, स्वच्छता, दया और सत्यवादिता के सिद्धान्तों का सहारा जरूरी है... हमें सदा स्मरण रखना चाहिए कि संसार में शान्ति के लिए हम चाहे जितना चिल्लाएँ, हमारे झूठे दंभ... स्त्रियों के प्रति आसक्ति या उनसे संसर्ग और किसी भी तरह की नशेबाजी की आदत से... मानव-सभ्यता शान्ति-विरत होकर पंगु बन जायेगी।

• • •

तीसरे खंड के निमित्त धन-संग्रह करने के लिए भक्तिवेदान्त स्वामी ने बम्बई जाकर प्रयत्न करने का निर्णय लिया। वे वहाँ जुलाई में पहुँचे और प्रेमकुटीर धर्मशाला में, जो एक नि:शुल्क आश्रम था, ठहर गये।

श्रील प्रभुपाद : *प्रेमकुटीर में मेरा अच्छा स्वागत हुआ। मैं अपनी पुस्तकें बेचने गया था। कुछ ने आलोचना की, "यह कैसा संन्यासी है? यह पुस्तक बेचने का व्यवसाय कर रहा है।" अधिकारियों ने ऐसा नहीं कहा, किन्तु उनमें से कुछ ने कहा। मैं पुस्तक लिखने में तब भी लगा था।*

तब मैं डालमिया परिवार के एक सदस्य के यहाँ पन्द्रह दिन का मेहमान बन गया। भाइयों में से एक ने कहा, "मैं अपने मकान में एक कुटीर बनाना चाहता हूँ। आप यहाँ रह सकते हैं। मैं आपको एक सुन्दर कुटीर दूंगा।" मैंने सोचा, "नहीं, यह अच्छा नहीं होगा कि मैं एक विषयी (भौतिकतावादी) पर पूरा निर्भर होऊँ और उसका कृपापात्र बनूँ।" लेकिन मैं वहाँ पन्द्रह दिन रहा और उस भाई ने पुस्तकें लिखने के लिए एक टाइपराइटर के एकमात्र इस्तेमाल का मुझे पूरा अधिकार दे दिया।

भक्तिवेदान्त स्वामी बम्बई में संस्थाओं और पुस्तक-विक्रेताओं का चक्कर लगाया करते थे। उन्होंने एक विज्ञापन छपाया, जिसमें वे प्रधानमंत्री शास्त्री के साथ दिखाई दे रहे थे। विज्ञापन में उन्होंने प्रधानमंत्री के और शिक्षा मंत्रालय के उस पत्र को भी दिया, जिसमें पुस्तक की पचास प्रतियों के खरीदने का आर्डर था। तब भी, उन्हें आर्डर बहुत थोड़े प्राप्त हो रहे थे।

तब उन्होंने सुमति मोरारजी से मिलने का निर्णय लिया, जो सिंधिया स्टीम-शिप

कम्पनी की अध्यक्षा थीं। बम्बई के अपने गुरुभाइयों से भक्तिवेदान्त स्वामी ने सुन रखा था कि सुमति मोरारजी साधुओं की सहायता करने के लिए विख्यात थीं और बम्बई गौड़ीय मठ को अनुदान दे चुकी थीं। वे उनसे कभी नहीं मिले थे। लेकिन उन्हें अच्छी तरह याद था कि १९५८ ई. में उनके एक अधिकारी ने स्वामीजी के अमेरिका जाने के आधे मार्ग-व्यय का प्रबन्ध करने का वादा किया था। अब वे *श्रीमद्‌भागवत* की छपाई में उनकी सहायता चाहते थे।

लेकिन उनके मिलने के प्रारम्भिक प्रयत्न सफल नहीं हुए। श्रीमती मोरारजी के अधिकारियों के टालमटोल से निराश होकर वे उनके कार्यालय के सामने की सीढ़ियों पर बैठ गये, इस निश्चय के साथ कि जब वे दिन के अन्त में कार्यालय से निकलेंगी तब उनका ध्यान उन पर जायेगा। उन एकाकी साधु की ओर लोगों का कुछ ध्यान जरूर गया, जब वे सिंधिया स्टीमशिप कंपनी के कार्यालय के सामने बैठे पाँच घंटे तक शान्त भाव से माला जप करते रहे। अन्ततोगत्वा, तीसरे पहर के अन्त में श्रीमती मोरारजी अपने सचिव, श्री चोकसी के साथ व्यवसाय सम्बन्धी वार्ता करती हुई तेजी से बाहर निकलीं; भक्तिवेदान्त स्वामी को देखकर वे रुक गईं और श्रीमान् चोकसी से पूछा, "यहाँ बैठे हुए ये सज्जन कौन हैं?"

"ये यहाँ पाँच घंटे से बैठे हैं।" सचिव ने कहा।

"ठीक है, मैं आती हूँ।" उन्होंने कहा और चलकर वहाँ पहुँच गईं, जहाँ भक्तिवेदान्त स्वामी बैठे थे। वे मुस्कराए और दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए खड़े हो गये। "स्वामीजी, मैं आपके लिए क्या कर सकती हूँ?" उन्होंने कहा।

भक्तिवेदान्त स्वामी ने संक्षेप में उन्हें *श्रीमद्‌भागवत* के तीसरे खंड को प्रकाशित करने का अपना इरादा बताया और कहा, "मैं चाहता हूँ कि आप मेरी सहायता करें।"

श्रीमती मोरारजी ने उत्तर दिया, "ठीक है, हम कल मिलेंगे, क्योंकि आज देर हो रही है। आप कल आ सकते हैं और हम विचार-विनिमय करेंगे।"

दूसरे सिन भक्तिवेदान्त स्वामी श्रीमती मोरारजी से उनके कार्यालय में मिले। वहाँ उन्होंने टंकित पाण्डुलिपि और प्रकाशित खंडों को देखा और कहा, "ठीक है, यदि आप इसे छापना चाहते हैं तो मैं आपको सहायता दूँगी; जितना भी आप चाहेंगे। आप इसे प्रकाशित कर सकते हैं।"

श्रीमती मोरारजी के इस आश्वासन के बाद भक्तिवेदान्त स्वामी पाण्डुलिपि तैयार करने के लिए वृन्दावन लौटने को स्वतंत्र थे। पहले के खंडों की तरह ही उन्होंने इस खंड की लिखाई और छपाई के लिए भी कठोर समय-सारणी बनाई। तीसरे खंड में पहला स्कन्ध पूरा हो जाना था। तब प्रभावोत्पादक साहित्य के साथ वे पश्चिम जाने को तैयार हो जायेंगे।

पहले और दूसरे खंड के आधार पर भी भारत में उनके कार्य का स्वागत होने लगा था। उपराष्ट्रपति और प्रधानमंत्री से उनकी भेंट हो चुकी थी। बम्बई की एक धनी-मानी व्यवसायी महिला तक वे सफलतापूर्वक पहुँच गये थे और पुस्तक भेंट करने के कुछ मिनटों के अन्दर उन्हें बड़ा अनुदान मिल गया था। पुस्तकें प्रचार का शक्तिशाली माध्यम थीं।

• • •

जन्माष्टमी निकट आ रही थी और भक्तिवेदान्त स्वामी राधा-दामोदर मन्दिर में एक बड़े उत्सव की योजना बना रहे थे। वे उत्तरप्रदेश के राज्यपाल, बिश्वनाथ दास को आमंत्रित करना चाहते थे कि वे भगवान् कृष्ण के जन्मोत्सव की अध्यक्षता करें। श्री बिश्वनाथ दास को *श्रीमद्भागवत* के पहले खंड की एक प्रति मिल चुकी थी और वे उसकी अनुकूल समीक्षा लिख चुके थे। यद्यपि वे एक राजनीतिज्ञ थे, तथापि वे साधुओं के प्रति प्रेम और सम्मान के लिए प्रसिद्ध थे। वे जाने-माने साधुओं को नियमित रूप से अपने घर पर आमंत्रित करते थे और वर्ष में एक बार मथुरा और वृन्दावन के सभी महत्त्वपूर्ण मन्दिरों के दर्शन के लिए जाया करते थे। भक्तिवेदान्त स्वामी ने वृन्दावन की नगरपालिका के चेयरमैन मंगालाल शर्मा से राज्यपाल को राधा-दामोदर मन्दिर में जन्माष्टमी-उत्सव के लिए आमंत्रित करने को कहा। राज्यपाल ने आमंत्रण तुरन्त स्वीकार कर लिया।

भक्तिवेदान्त स्वामी ने एक इश्तिहार छपाया, जिसमें घोषणा थी :

जन्माष्टमी उत्सव के अवसर पर
श्रील रूप और जीव गोस्वामी की समाधि-भूमि में
श्री श्री राधा-दामोदर मन्दिर
सेवाकुंज, वृन्दावन,
गौड़ीय कीर्तन कार्यक्रम
महामहिम श्री बिश्वनाथ दास
राज्यपाल, उत्तरप्रदेश
एवं
बम्बई के मुख्य अतिथि श्री जी. डी. सोमानी,
श्री रंगनाथजी मन्दिर वृन्दावन के ट्रस्टी की उपस्थिति में
तिथि वृन्दावन रविवार ३१ अगस्त १९६४, समय ७-३० से ८-३० रात्रि

इश्तिहार में ६० खंडों में पूरी होने वाली *श्रीमद्भागवत* माला का विज्ञापन था। इस अवसर पर गाए जाने वाले भजनों में "श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु," "निताइ-पद-कमल," "छह गोस्वामियों के प्रति प्रार्थनाएँ" और गौड़ीय वैष्णवों के अन्य लोकप्रिय गीत सम्मिलित थे—उन्हें एक गीत-पुस्तक रूप में बंगाली में मुद्रित किया गया था।

कार्यक्रम सफल रहा। उसमें बहुत से लोग सम्मिलित हुए और उन्होंने भगवान् कृष्ण के स्तुति-गीत गाए और प्रसाद लिया। भक्तिवेदान्त स्वामी ने *श्रीमद्भागवत* के एक श्लोक पर व्याख्यान दिया, जिसमें कलियुग की उपमा एक सागर से दी गई, जो दोषों से भरा है और जिससे बचाव का केवल एक उपाय था—हरे कृष्ण का संकीर्तन। हरे कृष्ण कीर्तन का नेतृत्व करने के बाद भक्तिवेदान्त स्वामी ने *श्रीमद्भागवत* के दूसरे खंड की एक प्रति राज्यपाल को भेंट की और सारे संसार में प्रचार करने की अपनी योजना के बारे में बताया।

जन्माष्टमी के दूसरे दिन भक्तिवेदान्त स्वामी का उनहत्तरवाँ जन्म-दिवस था। कुछ दिन बाद बिश्वनाथ दास ने स्वामी महाराज को लखनऊ राज-भवन में आमंत्रित किया। यह एक विशेष अवसर था और राज्यपाल ने कई साधुओं को आमंत्रित किया था और एक कीर्तन-कार्यक्रम आयोजित किया था। उन्होंने एक पेशेवर संगीतज्ञ-दल बुलाया था, जो सारे भारत का भ्रमण करके कीर्तन और संगीत के कार्यक्रम प्रस्तुत किया करता था। संगीतज्ञों में एक युवा संगीतज्ञ, शिशिर कुमार भट्टाचार्य भक्तिवेदान्त स्वामी से बहुत प्रभावित हुआ।

शिशिर भट्टाचार्य : *हम राज-भवन लखनऊ में कीर्तन करने के लिए आमंत्रित किये गये थे। हमारे दल में सात-या आठ लोग थे। यह राज-भवन था, एक विशाल भवन, और मैं एक मंच पर बैठा था। मैंने राज्यपाल बिश्वनाथ दास को देखा और उनकी बगल में एक साधु बैठे थे, जो वृद्ध थे, लेकिन मेरे विचार में सचमुच बहुत हट्टे-कट्टे थे। जब मैंने राज्यपाल को वहाँ बैठे देखा, तो मंच से नीचे उतरकर मैंने उन्हें सिर झुकाया। तब मैंने पूछा कि आप किस विषय पर सुनना चाहते हैं। उन्होंने कहा—"चैतन्य महाप्रभु पर कुछ होना चाहिए।" तब मैं बोला, "मुझे प्रसन्नता है कि आपने यह विषय चुना।" हमने आधे घंटे तक महाप्रभु का कीर्तन किया और उसके बाद हमने विशाल भोजन-कक्ष में चाँदी की प्लेटों में भोजन किया, जिन पर राज्यपाल का चिह्न अंकित था।*

हम इकट्ठे बैठे थे। मैं उन्हीं साधु की बगल में बैठा था और उन्होंने भक्तिवेदान्त स्वामी के रूप में अपना परिचय दिया। हम बातचीत करते रहे और तब स्वामी जी ने मुझे श्रीमद्भागवत की एक प्रति भेंट की। भक्तिवेदान्त स्वामी ने कहा, "मेरी इच्छा पाश्चात्य देशों में कृष्ण-नाम और चैतन्य महाप्रभु के प्रचार की है। मैं प्रयत्न में हूँ कि किसी तरह मुझे टिकट मिल जाये। यदि वह मिल गया, तो मैं जाऊँगा और महाप्रभु के उपदेशों का प्रचार करूंगा और उन्होंने महाप्रभु का यह पद सुनाया, "पृथ्वी ते आछे यत नगरादि ग्राम।

सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम।"(चैतन्य महाप्रभु ने भविष्यवाणी की थी कि "एक दिन मेरा नाम विश्व के हर नगर और ग्राम में जाना जाएगा।) लेकिन मुझे लगा कि वे वास्तव में ऐसा करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे, क्योंकि वे बहुत सीधे और गरीब थे।

• • •

तीसरे खंड की पाण्डुलिपि के तैयार होने और उसकी छपाई के लिए पैसे की व्यवस्था हो जाने पर भक्तिवेदान्त स्वामी एक बार फिर मुद्रण की दुनिया में प्रविष्ट हुए—जिसका अर्थ था कागज की खरीददारी करना, प्रूफ पढ़ना और सही करना और मुद्रक को समय-सारणी से बाँध रखना—जिससे पुस्तक की छपाई जनवरी १९६५ ई. तक समाप्त हो जाये। इस प्रकार वे, जिनके पास अपने पैसे नहीं थे, दो वर्ष से कुछ अधिक समय में तीसरे विशाल सजिल्द खंड के प्रकाशन में सफल हो गये।

विद्वत्-समाज में उनकी प्रतिष्ठा जिस प्रकार बढ़ रही थी, उस गति से हो सकता था कि अपने देशवासियों में वे शीघ्र एक मान्य पुरुष बन जाते। लेकिन उनकी दृष्टि पाश्चात्य जगत पर टिकी थी। और तीसरे खंड के प्रकाशन के साथ उन्हें लगा कि अब वे तैयार हैं। उनकी अवस्था ६९ वर्ष की थी और उन्हें शीघ्र जाना था। उस समय को चालीस वर्ष से अधिक बीत चुके थे, जब श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने कलकत्ता में एक युवक गृहस्थ को पश्चिम में कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए पहली बार कहा था। पहले अभय चरण को जिन पर गृहस्थी की जिम्मेदारियाँ अभी आई ही थीं, यह असम्भव लगा था। लेकिन उस बाधा को दूर हुए बहुत समय बीत गया था और दस वर्ष से अधिक समय से वे स्वतंत्रतापूर्वक विचरण कर रहे थे। लेकिन उनके पास कभी छदाम नहीं रहा था (और न ही उस समय था)। और पहले वे *श्रीमद्भागवत* के कुछ खंड प्रकाशित करना चाहते थे, ताकि उन्हें अपने साथ ले जायें; यदि उन्हें कुछ ठोस कार्य करना था, तो यह आवश्यक लगता था। अब कृष्ण-कृपा से तीन खंड प्रकाशित होकर उनके हाथ में थे।

श्रील प्रभुपाद : *मैंने योजना बनाई कि मुझे अमेरिका जरूर जाना चाहिए। आमतौर पर लोग लंदन जाते हैं, लेकिन मैं लंदन नहीं जाना चाहता था। मैं केवल यह सोच रहा था कि न्यूयार्क कैसे पहुँचूँ। मैं युक्ति बना रहा था, "मुझे इस ओर से, टोकियो, जापान होते हुए जाना है या उस ओर से? किस मार्ग से सस्ता पड़ेगा?" मैं यही चाहता था। मेरा लक्ष्य हमेशा न्यूयार्क रहा। कभी कभी मुझे स्वप्न आता कि मैं न्यूयार्क में हूँ।"*

तब भक्तिवेदान्त स्वामी की भेंट मथुरा के एक व्यवसायी श्री अग्रवाल से हुई। उन्होंने चलते चलते उनसे चर्चा की, जैसाकि वे अपने हर मिलने वाले से करते थे, कि वे पश्चिम जाना चाहते थे। यद्यपि श्री अग्रवाल का भक्तिवेदान्त स्वामी से परिचय केवल कुछ मिनटों

का था, तथापि श्री अग्रवाल तैयार हो गये कि वे अमेरिका में भक्तिवेदान्त स्वामी के लिए कहीं जामिन पाने का प्रयत्न करेंगे। यह काम श्री अग्रवाल कई बार कर चुके थे। जब कभी किसी साधु से उनकी भेंट होती थी, जो यह कहता कि वह विदेश जाकर हिन्दु संस्कृति का प्रचार करना चाहता है, तब वे अपने पुत्र गोपाल को, जो पेन्सिलवानिया में इंजीनियर था, लिख देते कि जामिनदारी का एक प्रपत्र भेज दो। जब श्री अग्रवाल ने इस तरह भक्तिवेदान्त स्वामी की सहायता करने को अपनी तत्परता प्रकट की, तो भक्तिवेदान्त स्वामी ने आग्रहपूर्वक उसकी माँग की।

श्रील प्रभुपाद : *मैंने श्री अग्रवाल से गम्भीरतापूर्वक कोई बात नहीं कही, किन्तु उन्होंने कदाचित् उसे बहुत गम्भीरता से ग्रहण किया। मैंने पूछा, "आप अपने पुत्र गोपाल को जामिनदारी के लिए क्यों नहीं कहते, जिससे मैं वहाँ जा सकूँ? मैं वहाँ प्रचार करना चाहता हूँ।"*

लेकिन भक्तिवेदान्त स्वामी को मालूम था कि वे पश्चिम जाने का स्वप्न भी नहीं देख सकते थे; उन्हें पैसे की आवश्यकता थी। मार्च १९६५ ई. में वे अपनी पुस्तकें बेचने के प्रयत्न में बम्बई फिर गये। इस बार भी वे निःशुल्क धर्मशाला, प्रेमकुटीर में ठहरे। लेकिन ग्राहक पाना कठिन था। उनकी भेंट परमान्द भगवानी से हुई, जो जयहिंद कालेज में लाइब्रेरियन थे। उन्होंने कालेज लाइब्रेरी के लिए पुस्तकें खरीदी और तब भक्तिवेदान्त स्वामी को कुछ सम्भाव्य खरीददारों के पास ले गये।

श्रीमान् भगवानी : *मैं उन्हें ग्रांट रोड पर पापुलर बुक डिपो में ले गया, ताकि उनकी कुछ पुस्तकें बिक जायें, लेकिन उन लोगों ने कहा कि वे अपने यहाँ पुस्तकें नहीं रख सकते, क्योंकि उनके यहाँ धार्मिक पुस्तकों की अधिक बिक्री नहीं थी। तब हम पास की दूसरी दुकान पर गये, लेकिन उसके मालिक ने भी पुस्तकें बेचने में असमर्थता प्रकट की। तब हम महालक्ष्मी मन्दिर के निकट साधुबेला में गये और वहाँ मन्दिर के महंत से मिले। उन्होंने, निस्सन्देह, हम लोगों का स्वागत किया। उनका अपना पुस्तकालय है और वे धार्मिक पुस्तकें रखते हैं। इसलिए हमने प्रार्थना की कि वे कृपा करके अपनी लाइब्रेरी में हमारी पुस्तकों का एक सेट रखें। उनका आश्रम बहुत सम्पन्न है; फिर भी उन्होंने असमर्थता प्रकट की।*

• • •

भक्तिवेदान्त स्वामी दिल्ली लौट गये। वे पुस्तकें बेचने के सामान्य तरीके खोजते रहे और जो भी अवसर मिले, उसका इंतजार करते रहे। और उन्हें आश्चर्य हुआ जब विदेश मंत्रालय ने उनसे सम्पर्क किया और सूचना दी कि संयुक्त राज्य जाने के लिए उनका

'आपत्ति नहीं' प्रमाणपत्र तैयार है। चूँकि देश से बाहर जाने के बारे में उन्होंने कोई लिखा-पढ़ी शुरू नहीं की थी, इसलिए उन्हें विदेश मंत्रालय से पूछना पड़ा कि यह सब कैसे हुआ। उन्हें कानूनी घोषणा-प्रपत्र दिखाया गया, जिस पर बटलर, पेन्सिलवानिया के श्रीमान् गोपाल अग्रवाल के हस्ताक्षर थे। श्रीमान् अग्रवाल ने विधिवत घोषणा की थी कि वे भक्तिवेदान्त स्वामी के अमेरिका के अधिवास-काल में उनका खर्च वहन करेंगें।

श्रील प्रभुपाद : *मैं नहीं जानता कि पिता-पुत्र में क्या पत्र-व्यवहार हुआ। मैंने तो केवल यह कहा था कि, "आप अपने पुत्र को क्यों नहीं कहते कि वह मेरी जमानत दे?" और अब तीन-चार महीने के बाद न्यूयार्क के इंडियन कांसुलेट (वाणिज्य दूतावास) से मेरे पास 'आपत्ति नहीं' प्रमाण-पत्र भेज दिया गया। श्रीमान् गोपाल ने अमेरिका में एक महीना ठहरने के लिए मेरी जमानत दी थी और अचानक मेरे पास कागज पहुँच गये।*

अपने पिता के अनुरोध पर गोपाल अग्रवाल ने मेरे लिए वही किया, जो वह बहुत से अन्य साधुओं के लिए कर चुका था। इनमें से कोई भी कभी अमेरिका नहीं गया था। यह केवल एक औपचारिकता थी, पिता को सन्तुष्ट करने का एक तरीका। गोपाल ने न्यूयार्क स्थित भारतीय वाणिज्य दूतावास से एक प्रपत्र प्राप्त किया; अपने मालिक से अपने मासिक वेतन के सम्बन्ध में विवरण लिया; अपने बैंक से एक पत्र लिखवाया कि अप्रैल १९६५ ई. में उसके खाते में कितने पैसे हैं और उसे नोटरी से प्रमाणित कराया। फिर न्यूयार्क का स्टैंप लगाकर उसने उसे अनुमोदित कराया और दिल्ली भेज दिया। अब भक्तिवेदान्त स्वामी को एक जामिन मिल गया था। लेकिन पासपोर्ट, वीजा, पी-फार्म और मार्ग-व्यय की आवश्यकता अब भी बनी थी।

पासपोर्ट पाना कठिन नहीं था। कृष्ण पंडित ने सहायता की और १० जून तक पासपोर्ट उन्हें मिल गया। सावधानीपूर्वक उन्होंने उस पर अपना पता लिखा—राधा-कृष्ण मन्दिर, छिप्पीवाड़ा। पिता का नाम लिखा गौरमोहन दे। उन्होंने कृष्ण पंडित से विदेश जाने के व्यय के बारे में भी कहा। लेकिन कृष्ण पंडित ने इनकार कर दिया—यह सोचकर कि किसी साधु का विदेश जाना हिन्दू सिद्धान्तों के विरुद्ध था और वह काम खर्चीला भी था।

अपना पासपोर्ट और जमानत के कागज लेकर भक्तिवेदान्त स्वामी बम्बई गये, पुस्तकें बेचने या छपाई के लिए धन इकठ्ठा करने के लिए नहीं; वे अमरीका के लिए टिकट चाहते थे। उन्होंने सुमति मोरारजी तक पहुँचने की फिर कोशिश की। उनके सचिव श्रीमान् चौकसी को उन्होंने जमानत के कागज दिखाए। श्रीमान् चौकसी प्रभावित हुए और उनकी ओर से श्रीमती मोरारजी के पास गये। वे बोले, "वृन्दावन के स्वामी फिर आये हैं। आपके अनुदान से उन्होंने अपनी पुस्तक छपवाई है। उन्हें एक जामिन मिल गया है और वे अमेरिका जाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि आप किसी सिंधिया जहाज से उन्हें भेज दें।"

श्रीमती मोरारजी ने कहा, "नहीं, स्वामी अमेरिका जाने के लिए और वहाँ कुछ कर सकने के लिए बहुत वृद्ध हो चुके हैं।" श्रीमान् चौकसी ने भक्तिवेदान्त स्वामी को श्रीमती मोरारजी के शब्द कह सुनाए। उन्होंने उन्हें असहमतिपूर्वक सुना। वे चाहती थीं कि स्वामीजी भारत में रहें और *श्रीमद्‌भागवत* को पूरा करें। अमेरिका क्यों जायें; यहीं रहकर कार्य पूरा करें।

• • •

लेकिन भक्तिवेदान्त स्वामी जाने के लिए दृढ़-संकल्प थे। उन्होंने श्रीमान् चौकसी से कहा कि वे श्रीमती मोरारजी को मनाएँ और श्रीमान् चौकसी को समझाया कि उन्हें क्या कहना चाहिए। "मुझे लगता है कि यह सज्जन अमरीका जाने और वहाँ के लोगों के बीच प्रचार करने को बहुत उत्साहित हैं।..." लेकिन जब श्रीमान् चौकसी ने ऐसा कहा तो श्रीमती मोरारजी ने फिर मना कर दिया और बोलीं कि स्वामी बहुत वृद्ध है और वहाँ बहुत सर्दी होती है। वे वापस नहीं आ सकेंगे और इसमें सन्देह है कि वे वहाँ कुछ कर सकेंगे। अमेरिका में लोग इतने सहयोगपूर्ण नहीं हैं और शायद वे उनकी बात सुनेंगे नहीं।

श्रीमान् चौकसी की प्रभावहीनता से निराश होकर भक्तिवेदान्त स्वामी ने श्रीमती मोरारजी से व्यक्तिगत साक्षात्कार की माँग की। वह मंजूर हो गई और श्वेत केश दृढ़-निश्चयी भक्तिवेदान्त स्वामी ने जोरदार प्रार्थना की, "कृपापूर्वक मुझे एक टिकट दीजिए।"

सुमति मोरारजी चिंतित होकर बोलीं, "स्वामीजी, आप इतने वृद्ध हैं और यह जिम्मेदारी ले रहे हैं। क्या आप समझते हैं कि यह ठीक है?"

उन्होंने, अपना हाथ इस तरह उठाते हुए कि मानों वे एक शंकालु पुत्री को आश्वासन दे रहे हों, कहा, "नहीं, यह ठीक है।" "लेकिन क्या आप जानते हैं कि मेरे सचिव लोग क्या सोचते हैं? वे कहते हैं, 'स्वामीजी वहाँ मरने के लिए जा रहे हैं।'"

भक्तिवेदान्त ने चेहरे पर ऐसी मुद्रा बनाई, मानों वे एक मूर्खतापूर्ण अफवाह का निराकरण कर रहे हों। उन्होंने फिर आग्रह किया कि सुमति मोरारजी उन्हें एक टिकट दें। वे बोलीं, "अच्छा, आप पी. फार्म लाइए और मैं अपने जहाज से आपको भिजवाने का प्रबन्ध कर दूँगी।" भक्तिवेदान्त स्वामी के चेहरे पर मुसकान की चमक आ गई और वे प्रसन्नतापूर्वक कार्यालय के आश्चर्यचकित और शंकाग्रस्त कलर्कों के पास से गुजरते हुए चले गये।

पी. फार्म भारत के उन नागरिकों को देना होता है, जो देश के बाहर जाना चाहते हैं। यह भारतीय स्टेट बैंक द्वारा दिया जानेवाला एक प्रमाणपत्र होता है कि विदेश जाने वाले व्यक्ति पर भारत में कोई अधिक ऋण नहीं है और बैंकों की ओर से उसे अनुमति है। पी.

फार्म को पाने में थोड़ा समय लगेगा और उन्हें अभी संयुक्त राज्य का वीजा भी नहीं मिला था। इन सरकारी अनुमतियों को प्राप्त करने के लिए उन्हें बम्बई में भाग-धौड़ करनी होगी, लेकिन उनके ठहरने के लिए कोई स्थान नहीं था। अत: श्रीमती मोरारजी उन्हें सिंधिया कालोनी में जो सिंधिया कम्पनी के कर्मचारियों के रहने के लिए बनी थी, ठहरने देने के लिए राजी हो गईं।

वे एक छोटी-सी, बिना किसी फर्नीचर वाली कोठरी में रहने लगे। उनके पास केवल उनका ट्रंक और टाइपराइटर था। सिंधिया कम्पनी के सभी कर्मचारी जानते थे कि श्रीमती मोरारजी उन्हें पश्चिम भेज रही हैं और कुछ को उनके कार्य में रुचि होने लगी। वे बहुत प्रभावित थे, क्योंकि यद्यपि भक्तिवेदान्त स्वामी इतने वृद्ध थे, फिर भी वे प्रचार के लिए विदेश जा रहे थे। वे एक विशेष प्रकार के साधु थे, एक विद्वान पुरुष। भक्तिवेदान्त स्वामी से उन्हें मालूम हुआ कि स्वामीजी अपने साथ अपनी सैकड़ों पुस्तकें ले जा रहे थे, लेकिन उनके पास पैसे नहीं थे। सिंधिया कालोनी में वे विख्यात व्यक्ति बन गये। बहुत से परिवारों के लोग उनके लिए चावल, सब्जी और फल लाने लगे। वे वस्तुएं इतनी मात्रा में लाते कि स्वामीजी सब नहीं खा पाते थे। उन्होंने इसकी चर्चा श्रीमान् चौकसी से की। श्रीमान् चौकसी ने राय दी कि, "आप उन्हें स्वीकार कर लिया करें, फिर बाँट दिया करें।" तब भक्तिवेदान्त स्वामी बचे हुए खाने को बच्चों में बाँटने लगे। कालोनी के अधिवासियों में से कुछ वृद्ध लोग *श्रीमद्भागवत* पर उनके प्रवचन सुनने को एकत्र होने लगे। सिंधिया के मुख्य खजांची, श्री वसावड़ा उनसे विशेष रूप से प्रभावित हो गये और उनकी वार्ता सुनने नियमित रूप से आने लगे। भक्तिवेदान्त स्वामी की पुस्तकें प्राप्त करके उन्हें पढ़ने के लिए वे घर ले जाते थे।

भक्तिवेदान्त स्वामी की कोठरी के सामने का बरामदा सिंधिया के कर्मचारी, श्रीमान् नागराजन, और उनकी पत्नी के बरामदे से मिला हुआ था।

श्रीमती नागराजन : *मैं जब भी उधर से निकलती, वे लिखते हुए या जप करते हुए मिलते। मैं उनसे पूछती, "स्वामीजी, आप क्या लिख रहे हैं?" वे खिड़की के पास बैठते और एक के बाद एक संस्कृत श्लोक का अनुवाद करते रहते। उन्होंने मुझे दो पुस्तकें दी और कहा, "बेटी, यदि तुम इन्हें पढ़ोगी, तो समझ जाओगी।" हम अपने घर में उनसे प्रवचन कराते थे और उसमें चार या पांच गुजराती महिलाएँ आती थीं। ऐसे ही एक प्रवचन में उन्होंने एक महिला से कहा कि जो महिलाएँ बगल में माँग निकालती हैं वे ठीक नहीं करतीं। भारतीय महिलाओं को माँग बीच में निकालनी चाहिए। महिलाओं को स्वामीजी का प्रवचन सुनने का बड़ा शौक था और वे बड़े प्रेम से उसे सुनती थीं।*

वे हर दिन इस कोशिश में जाते कि उन्हें वीजा और पी-फार्म जितनी जल्दी सम्भव

हो, मिल जायें। वे अपनी पुस्तकें बेचते थे, लोगों से सम्पर्क बढ़ाते थे और *श्रीमद्भागवत* के आगे के खंडो को प्रकाशित करने के लिए सहायक ढूँढते थे। श्रीमान् नागराजन ने उनकी सहायता के लिए कोशिश की। टेलीफोन डाइरेक्टरी से उन्होंने ऐसे सम्पन्न व्यवसायियों और व्यापारियों की सूची तैयार की, जो वैष्णव थे और स्वामीजी की सहायता करने में जिनकी रुचि हो सकती थी। सिंधिया कालोनी में भक्तिवेदान्त स्वामी के पड़ोसी देखते थे कि वे शाम को नितान्त थके हुए घर लौटते थे। वे शान्त बैठ जाते थे। कुछ पड़ोसियों को लगता कि कदाचित् वे उदास लगते थे। लेकिन थोड़ी ही देर में वे तरोताजा होकर बैठ जाते और लिखने में लग जाते।

श्रीमती नागराजन : *जब वे घर लौटते, तो हम उन्हें प्रोत्साहित करतीं और कहतीं, "स्वामीजी, एक दिन आप अपना लक्ष्य प्राप्त करेंगे।" वे कहते, "समय अब भी अनुकूल नहीं है। समय अब भी अनुकूल नहीं है। वे सब लोग अज्ञानी हैं। वे समझते नहीं। तब भी मुझे प्रयत्न करते रहना है।"*

कभी मैं उधर से निकलती, तो उनकी चादर उनकी कुर्सी पर पड़ी होती, पर वे खिड़की की दहलीज पर बैठे होते थे। मैं पूछती, "स्वामीजी, क्या आपकी भेंट कुछ अच्छे कामकाजी लोगों से हुई?" वे उत्तर देते, "आज कोई खास नहीं हुई। कोई विशेष प्राप्ति नहीं हुई और यह निराशाजनक है। कल कृष्ण भगवान् कुछ अधिकी विवरण देंगे।" और वे शान्त भाव से वहाँ बैठ जाते।

दस मिनट के बाद वे अपनी कुर्सी में बैठ जाते और लिखना शुरू कर देते। मुझे आश्चर्य होता कि कैसे स्वामीजी एक मिनट में इतने थक जाते थे और दूसरे ही मिनट... थके होने पर भी, वे हार नहीं मानते थे। वे कभी निराशा की बात नहीं करते थे। और हम हमेशा उन्हें उत्साहित करतीं और कहती थीं, "यदि आज आप कुछ नहीं पा सके हैं, तो कल निश्चय ही ऐसे कुछ लोग मिलेंगे, जो आपको प्रोत्साहित करेंगे।" और मेरी मित्र सुबह-शाम प्रवचन सुनने आती थीं और स्वामीजी को नमस्कार करती थीं और फल देती थीं।

श्रीमान् नागराजन : *स्वभाव से वे बहुत मिलनसार और सीधे-सादे थे। हमारे मित्र उन्हें कुछ रुपए देते तो वे कहते, "ठीक है, इससे सहायता होगी।" वे हमारी कालोनी से अँधेरी स्टेशन पैदल जाते थे। दो किलोमीटर का मार्ग था और वे बिना बस लिए पैदल जाते थे, क्योंकि उनके पास पैसे नहीं थे।*

भक्तिवेदान्त स्वामी ने "माई मिशन" ("मेरा लक्ष्य") शीर्षक से एक पन्ना छाप रखा था और वे उसे प्रभावशाली व्यक्तियों को इसलिए दिखाया करते थे कि उनसे उन्हें *श्रीमद्भागवत* के प्रकाशन के लिए वित्तीय सहायता मिलेगी। उस मुद्रित पन्ने में उनकी यह

प्रस्तावना थी कि वर्तमान भौतिकतावादी समाज की बुराइयों को दूर करने के लिए भगवद्-चेतना ही एक मात्र औषधि है। वैज्ञानिक उन्नति और भौतिक सुविधाओं के होते हुए भी संसार में शान्ति नहीं है; इसलिए *भगवद्गीता* और *श्रीमद्भागवत* का, जो भारत की कीर्ति हैं, प्रसार सारे संसार में होना चाहिए।

श्रीमती मोरारजी ने भक्तिवेदान्त स्वामी से पूछा कि, "क्या आप मुझे हर दिन संध्या-समय *श्रीमद्भागवत* सुनाएँगे?" भक्तिवेदान्त स्वामी राजी हो गये। हर दिन शाम को ६ बजे उनके लिए वे कार भेज देतीं। वे लोग श्रीमती मोरारजी के उद्यान में बैठते और वहाँ श्री भक्तिवेदान्त स्वामी *श्रीमद्भागवत* सुनाते और उस पर टिप्पणी करते।

श्रीमती मोरारजी : *वे संध्या-समय आते थे और श्लोकों को लय में गाकर सुनाते थे, जैसाकि भागवत-पाठ में प्रायः होता है। और वे स्थान-स्थान पर टिप्पणी करते जाते थे—भागवत् की कथा में प्रश्न और उत्तर चलते ही हैं—पर उनकी सारी टिप्पणियाँ भागवत से ही होती थीं। इस प्रकार वे आते, बैठते, मुझे भागवत की व्याख्या सुनाते और चले जाते। वे मेरे लिए समय देते; मैं उन्हें ध्यान से सुनती थी। यह दस-पन्द्रह दिन चला।*

सिंधिया की सहायता और संयुक्त राज्य में जमानत पा लेना उनकी बड़ी उपलब्धियाँ थीं। और सिंधिया के कर्मचारियों की सहायता से उन्हें २८ जुलाई १९६५ को वीजा (प्रवेश-पत्र) प्राप्त हो गया। लेकिन पी-फार्म की कार्यवाही मंद गति से चलती रही और डर लगने लगा कि कहीं वह अन्तिम अलंघ्य बाधा न साबित हो।

श्रील प्रभुपाद : *पहले बाहर जाने पर कोई रुकावट नहीं थी। लेकिन मुझ जैसे संन्यासी को भी बाहर जाने के लिए सरकार की अनुमति मिलने में इतनी कठिनाई हो रही थी। मैंने पी-फार्म पाने के लिए प्रार्थना की थी, लेकिन पी-फार्म मिल नहीं रहा था। तब मैं स्टेट बैंक आफ इंडिया में गया। वहाँ के अधिकारी श्रीमान् मर्तरचारी थे। उन्होंने कहा, "स्वामीजी, आपकी जमानत एक प्राइवेट व्यक्ति ने दी है। इसलिए हम स्वीकार नहीं कर सकते। यदि आप किसी संस्था द्वारा आमंत्रित होते, तो हम विचार करते। किन्तु आप एक प्राइवेट व्यक्ति द्वारा एक मास के लिए आमंत्रित हैं। और एक महीने बाद यदि आप कठिनाई में पड़ गये, तो बहुत सारी बाधाएँ उत्पन्न होंगी।" लेकिन मैं जाने के लिए सारी तैयारियाँ कर चुका था। इसलिए मैंने पूछा, "आपने क्या किया है?" वे बोले, "मैंने आपको पी-फार्म न देने का फैसला किया है।" मैंने कहा, "नहीं, नहीं, ऐसा न करें। अच्छा हो कि आप मुझे अपने ऊँचे अधिकारी के पास भेज दें। ऐसा नहीं होना चाहिए।"*

उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली और मेरी फाइल विदेशी विनिमय विभाग के मुख्य अधिकारी जैसे किसी के पास भेज दी। वह स्टेट बैंक आफ इंडिया का सबसे बड़ा अधिकारी था। मैं उससे मिलने गया। मैंने उसके सचिव से कहा, "क्या आपके पास ऐसी

कोई फाइल है? कृपा करके आप उसे श्रीमान् राव के सामने रखिए। मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।" सचिव राजी हो गया और उसने फाइल रख दी और श्रीमान् राव से मिलने वालों में मेरा नाम लिख दिया। मैं प्रतीक्षा कर रहा था। श्रीमान् राव स्वयं मेरे पास चले आये। उन्होंने कहा, "स्वामीजी, मैंने आपका काम कर दिया है। चिन्ता न करें।"

श्रीमती मोरारजी के आदेश से उनके सचिव, श्रीमान् चौकसी ने भक्तिवेदान्त स्वामी के लिए सारा प्रबन्ध पूरी तरह से कर दिया। चूँकि उनके पास गरम कपड़े नहीं थे, इसलिए श्रीमान् चौकसी उन्हें एक ऊनी जैकेट और अन्य ऊनी कपड़े खरीदने के लिए ले गये। श्रीमान् चौकसी ने नये कपड़ों पर, जिनमें कुछ नई धोतियाँ भी शामिल थीं, लगभग २५० रु. व्यय किये। भक्तिवेदान्त स्वामी की प्रार्थना पर श्रीमान् चौकसी ने सिंधिया स्टीमशिप कम्पनी के एक विज्ञापन के सन्दर्भ में एक छोटी-सी पुस्तिका की पाँच सौ प्रतियाँ छपवा दीं, जिसमें भगवान् चैतन्य-रचित ८ पद थे, और *श्रीमद्भागवत* का एक विज्ञापन सम्मिलित था।

श्रीमान् चौकसी : *मैंने उनसे पूछा, "आप पहले क्यों नहीं गये? आप अब इस अवस्था में संयुक्त राज्य क्यों जाना चाहते है?" उन्होंने उत्तर दिया, "मुझे विश्वास है कि मैं कुछ अच्छा काम कर सकूँगा।" उनका विचार था कि किसी को वहाँ होना चाहिए, जो उन लोगों के पास जा सके जो जीवन में खो चुके हैं और उन्हें सिखा सके और बता सके कि सच्चा मार्ग क्या है। मैंने उनसे कई बार पूछा, "आप संयुक्त राज्य क्यों जाना चाहते हैं? आप बम्बई, दिल्ली या वृन्दावन में कोई नई चीज क्यों नहीं शुरू करते?" मैं उन्हें चिढ़ाता भी था, "आप संयुक्त राज्य देखना चाहते हैं। इसलिए आप जाना चाहते हैं। सभी स्वामी संयुक्त राज्य जाना चाहते हैं और आप लोग वहाँ आनन्द करना चाहते हैं।" वे उत्तर देते, "मुझे देखना क्या है? मैं अपना जीवन समाप्त कर चुका हूँ।"*

लेकिन कभी कभी उनका मिजाज गरम भी हो जाता था। देर के कारण वे मुझ पर क्रोधित भी हो जाते थे। वे कहते, "यह क्या बकवास है?" तब मैं समझ जाता कि अब उन्हें गुस्सा आ रहा है। कभी कभी वे कहते, "ओह, क्या श्रीमती मोरारजी ने अभी तक इस कागज पर हस्ताक्षर नहीं किया? वे कहती हैं, कल आइये, हम कल बात करेंगे। यह क्या है? हर दिन इस तरह वापस क्यों जाया जाये?" वे गुस्सा हो जाते। तब मैं कहता, "आप यहाँ बैठ जायें।" लेकिन वे बोल पड़ते, "मुझे यहाँ कब तक बैठना होगा?" वे अधीर हो उठते।

अन्त में श्रीमती मोरारजी ने अपने 'जलदूत' नामक जहाज पर उनके लिए एक स्थान निर्धारित कर दिया। 'जलदूत' कलकत्ता से १३ अगस्त को चलने वाला था। श्रीमती मोरारजी ने इसका प्रबन्ध कर दिया था कि भक्तिवेदान्त स्वामी ऐसे जहाज से यात्रा करें,

जिसका कप्तान एक शाकाहारी ब्राह्मण की आवश्यकताओं को समझता हो। उन्होंने 'जलदूत' के कप्तान, अरुण पंडया से स्वामीजी के लिए अतिरिक्त सब्जियाँ और फल ले जाने को कहा। श्रीमान् चौकसी ने अन्तिम दो दिन भक्तिवेदान्त स्वामी के साथ बम्बई में बिताए; प्रेस से उनके पैम्पलेटस् उठाए, कपड़े खरीदवाए और कार में स्टेशन ले जाकर उन्हें कलकत्ता की गाड़ी में बैठाया।

• • •

भक्तिवेदान्त स्वामी 'जलदूत' के रवाना होने के केवल कुछ दिन पहले कलकत्ता पहुँचे। यद्यपि उन्होंने जीवन का बहुत सा हिस्सा वहीं बिताया था, लेकिन अब उनके रहने के लिए वहाँ कोई जगह न थी। ठीक वही हाल था, जैसा उन्होंने अपने 'वृन्दावन भजन' में लिखा था : "मेरे पत्नी, पुत्र, पुत्रियाँ, पौत्र सभी हैं, लेकिन मेरे पास धन नहीं है, इसलिए वे निष्फल वैभव हैं।" यद्यपि इसी नगर में बचपन में उनका लालन-पालन इतने चाव से हुआ था, लेकिन वे दिन भी अब सदा के लिए चले गये थे : "मेरे प्यारे पिता और माता अब कहाँ चले गये हैं? और वे मेरे सब अग्रज कहाँ हैं, जो मेरे अपने स्वजन थे? मुझे उनके बारे में कौन बताएगा, बोलो, कौन? मेरे परिवार का जो शेष रह गया है, वह नामों की एक सूची मात्र है।"

कलकत्ता में जिन सैकड़ों लोगों को भक्तिसिद्धान्त स्वामी जानते थे, उनमें से मिलने के लिए उन्होंने श्रीमान् शिशिर भट्टाचार्य को चुना—उस जोशीले कीर्तन-गायक को जिससे वे एक साल पहले राजभवन लखनऊ में मिल चुके थे। श्रीमान् भट्टाचार्य न तो कोई सम्बन्धी थे, न शिष्य, न घनिष्ठ मित्र, लेकिन वे सहायता के लिए तत्पर थे। भक्तिवेदान्त स्वामी भट्टाचार्य के निवास पर उनसे मिले और उन्हें सूचित किया कि कुछ दिन बाद वे एक मालवाहक जहाज से संयुक्त राज्य के लिए रवाना होंगे। उन्हें ठहरने के लिए जगह चाहिए थी और वे कुछ व्याख्यान देना चाहते थे। श्रीमान् भट्टाचार्य अपने मित्रों के घरों पर कुछ निजी बैठकें कराने की व्यवस्था में तुरन्त लग गये, जहाँ पहले उन्हें भजन गाना था और उसके बाद भक्तिवेदान्त स्वामी का व्याख्यान होना था।

श्रीमान् भट्टाचार्य ने सोचा कि एक साधु का अमरीका के लिए प्रस्थान समाचार-पत्रों के लिए महत्त्वपूर्ण समाचार का विषय होना चाहिए। भक्तिवेदान्त स्वामी को साथ लेकर वे कलकत्ता के सभी समाचार-पत्रों—*हिन्दुस्तान स्टैन्डर्ड, अमृत बाजार पत्रिका, जुगान्तर, स्टेट्समैन* आदि—के कार्यालयों में गये। भक्तिवेदान्त स्वामी के पास केवल एक फोटो था, जो उनके पासपोर्ट पर लगा था। उससे उन लोगों ने समाचार-पत्रों के लिए कुछ प्रतियाँ तैयार कराईं। श्रीमान् भट्टाचार्य ने यह बताने की कोशिश की कि स्वामीजी क्या करने के

लिए जा रहे थे; समाचार देने वालों ने उनकी बात सुनी। लेकिन किसी ने कुछ लिखकर छपाया नहीं। अन्त में वे *दैनिक बासुमती* में गये, जो स्थानीय दैनिक बंगाली समाचार-पत्र था। वह भक्तिवेदान्त स्वामी के चित्र के साथ एक छोटा लेख छापने को तैयार हो गया।

श्रीमान् भट्टाचार्य भक्तिवेदान्त स्वामी की आखिरी तैयारी और व्याख्यान में सहायता करते रहे।

श्रीमान् भट्टाचार्य : *हम किराए की टैक्सी से इधर-उधर जाते। और वे प्रचार के लिए निकलते। मैं उस बीच उनसे कोई बात न करता। लेकिन एक बार जब वे प्रचार से लौट रहे थे तो मैंने कहा, "आपने इस विषय में यह कहा, लेकिन मैं कहता हूँ यह वैसा नहीं, ऐसा है।" मैंने उनकी बात का विरोध किया या उनसे तर्क किया। वे क्रोधित हो गये। जब भी हमारे बीच बहस होती और मैं कहता कि, "नहीं, मैं समझता हूँ, यह ऐसा नहीं, ऐसा है" तो वे चिल्लाने लगते। वे क्रोधित होकर कहते, "तुम हमेशा कहते हो, 'मैं समझता हूँ, मैं समझता हूँ, मैं समझता हूँ' लेकिन तुम्हारे इस समझने का महत्त्व क्या है? हर चीज वही है, जो तुम समझते हो। लेकिन इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। महत्त्व उसका है, जो शास्त्र कहते हैं। तुम्हें उनका अनुगमन करना चाहिए।" मैंने कहा, "मुझे वह करना चाहिए, जो मेरी समझ में आये, जो मैं अनुभव करूँ—महत्त्व उसी का है।" उन्होंने कहा, "नहीं, तुम्हें यह भूल जाना चाहिए। तुम्हें अपनी इच्छा को भूल जाना चाहिए। तुम्हें अपनी आदत बदल लेनी चाहिए। अच्छा हो कि तुम शास्त्रों पर निर्भर करो। शास्त्र जो कहते हैं, उसका पालन करो, वही करो। मैं वह नहीं कहता, जो मैं सोचता हूँ, अपितु मैं उसी को दुहरा रहा हूँ, जो शास्त्र कहते हैं।"*

रवाना होने के एक दिन पहले भक्तिवेदान्त स्वामी श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की समाधि का दर्शन करने निकट में स्थित मायापुर गये। तदन्तर वे कलकत्ता लौट आये। अब वे तैयार थे।

उनके पास केवल एक सूटकेस था, एक छतरी और कुछ शुष्क खाद्यान्न। वे नहीं जानते थे कि अमरीका में उन्हें खाने के लिए क्या मिलेगा। शायद वहाँ केवल मांसाहार मिले। यदि ऐसा हुआ तो वे केवल उबले हुए आलू और अनाज पर रहेंगे। उनका मुख्य सामान, जिसमें कई ट्रंकों में भरी हुई पुस्तकें थीं, सिंधिया जहाज में अलग से ले जाया जा रहा था। तीन खंडों के सेट वाली पुस्तक की दो सौ प्रतियों के विचार से ही उनमें आत्म-विश्वास पैदा हो रहा था।

रवाना होने के दिन उन्हें ऐसे ही आत्म-विश्वास की जरूरत थी। अपने पहले के जीवन से उनका यह अलगाव बहुत महत्त्वपूर्ण था, और वे बहुत वृद्ध थे और उनका स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं था। फिर वे एक अज्ञात देश में जा रहे थे, जहाँ स्वागत की आशा

नहीं थी। अपने देश भारत में गरीब होना और अज्ञात होना एक बात थी। इस कलियुग में भी जब भारत के नेता वैदिक संस्कृति की अवहेलना कर रहे थे और पश्चिम की नकल कर रहे थे, फिर भी भारत भारत ही था। इसमें अभी भी वैदिक सभ्यता के अवशेष बाकी थे। वे लखपतियों, राज्यपालों और प्रधानमंत्री से, केवल उनके द्वार पर जाकर और कुछ प्रतीक्षा करके मिल चुके थे। भारत में संन्यासियों का सम्मान था, श्रीमद्भागवत का सम्मान था। लेकिन अमेरिका में तो बात दूसरी होगी। वहाँ के लिए वे कुछ नहीं थे, केवल एक विदेशी थे। वहाँ न साधुओं की कोई परम्परा थी, न मन्दिर थे, न निःशुल्क आश्रम। लेकिन जब उन्हें उन पुस्तकों का ध्यान आता जो वे ले जा रहे थे—जिनमें अँग्रेजी भाषा में दिव्य ज्ञान भरा था—तो उनमें आत्मविश्वास जाग उठता। अमेरिका में जब वे किसी से मिलेंगे तो उसे 'श्रीमद्भागवत'—"भारत का शान्ति और सद्भावना का सन्देश" नामक सूचना पत्रक भेंट करेंगे।

१३ अगस्त का दिन था, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के कुछ दिन पहले का, जिसके दूसरे दिन उनका सत्तरवाँ जन्मदिन आने वाला था। विगत कुछ वर्षों में वे हर कृष्ण जन्माष्टमी के दिन वृन्दावन में होते थे। बहुत से वृन्दावनवासी, जो वहाँ रहते हुए वृद्धावस्था को प्राप्त हुए थे और जहाँ उन्हें शान्ति मिलती थी, उसे छोड़ना कभी पसन्द नहीं करते थे। भक्तिवेदान्त स्वामी को यह भी चिंता थी कि कहीं उनकी मृत्यु वृन्दावन से दूर किसी देश में न हो। यही कारण है कि सभी वैष्णव साधु और विधवाएँ यह शपथ लिए थे कि मथुरा जाने के लिए भी वे वृन्दावन को नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि वृन्दावन में शरीर त्याग करना जीवन की पूर्णता प्राप्त करना था। और हिन्दू परम्परा यह है कि एक संन्यासी को सागर पार नहीं करना चाहिए और मलेच्छों के देश में नहीं जाना चाहिए, लेकिन इन सबके ऊपर श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की इच्छा थी और उनकी इच्छा भगवान् कृष्ण की इच्छा से भिन्न नहीं थी। और भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने भविष्यवाणी की थी कि हरे कृष्ण का कीर्तन संसार के हर कस्बे और गाँव में होगा।

श्रीमान् भट्टाचार्य और भक्तिवेदान्त स्वामी एक टैक्सी करके कलकत्ता बन्दरगाह पहुँचे। भक्तिवेदान्त स्वामी के पास *चैतन्य चरितामृत* की एक बँगला-प्रति थी, जिसे वे सागर-यात्रा के बीच पढ़ना चाहते थे। अपना भोजन वे किसी तरह जहाज पर बना लिया करेंगे; अन्यथा वे भूखे रहेंगे—जैसी कृष्ण की इच्छा। अपने सारे जरूरी सामान की उन्होंने जाँच की—यात्री टिकट, पासपोर्ट, प्रवेश-पत्र, पी-फार्म, जामिन का पता आदि आदि। अन्ततः समय आ गया था।

श्रील प्रभुपाद : *कितनी बड़ी कठिनाई से मैं देश के बाहर जा सका। कृष्ण-कृपा से मैं किसी तरह देश से बाहर निकल सका, जिससे मैं सारे संसार में कृष्णभावनामृत का*

प्रसार करूँ। अन्यथा, भारत में रहकर यह सम्भव नहीं था। मैं भारत में एक आन्दोलन शुरू करना चाहता था, लेकिन मुझे प्रोत्साहन नहीं मिला।

काला, छोटा और पुराना मालवाहक जहाज बन्दरगाह के किनारे लगाया गया। किनारे से एक मार्ग जहाज की छत तक जाता था। भारतीय व्यवसायी नाविक केसरिया वस्त्र पहने उस वृद्ध साधु को उत्सुकता-भरी दृष्टि से देखते रहे, जब वे टैक्सी के अपने मित्र से अन्तिम वार्ता करते हुए टैक्सी छोड़कर बाहर निकले और दृढ़तापूर्वक जहाज की ओर बढ़ चले।

हजारों वर्षों से कृष्ण-भक्ति की जानकारी केवल भारत में थी; बाहर नहीं, सिवाय उन विकृत और झूठे विवरणों के, जो विदेशियों द्वारा दिए जाते थे। और जो स्वामी अभी तक अमेरिका पहुँचे थे, वे भक्त नहीं थे—मायावादी, शून्यवादी स्वामी थे। लेकिन अब कृष्ण भक्तिवेदान्त स्वामी को अपने दूत के रूप में भेज रहे थे।

श्रीमान् भट्टाचार्य : *वे अकेले थे—एकाकी योद्धा। जब वे रवाना हुए, उस समय बन्दरगाह पर उन्हें विदा देने के लिए कोई नहीं था। न मित्र, न समर्थक, न शिष्य, कोई नहीं। यदि आप मेरा नाम भी लें तो मैं उनका शिष्य नहीं था। मैं किसी अन्य का शिष्य था। इसलिए मैं उनका अनुयायी नहीं था। लेकिन प्रेम में सहभागी होने के कारण मेरे मन में उनके लिए बड़ा सम्मान था। इसलिए मैं अकेला व्यक्ति था, जो उन्हें विदा देने के लिए किनारे पर खड़ा था। मेरे साथ कोई नहीं था। मैं नहीं जान सका कि यह इतनी महत्त्वपूर्ण वस्तु थी।*